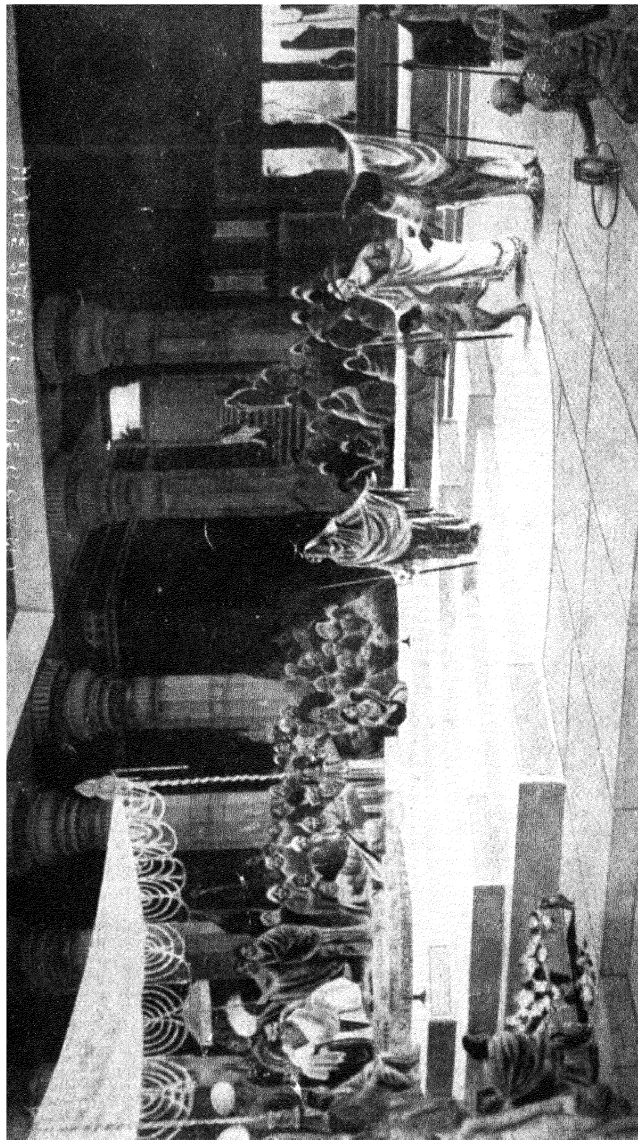


**TEXT FLY WITHIN
THE BOOK ONLY**

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180694

UNIVERSAL
LIBRARY



राजा शुद्धक की सभा ।

कादम्बरी ।

Checked 1929

उपक्रमणिका ।

शुद्रक नाम का एक परम बुद्धिमान् प्रबल महा-
प्रतापी राजा अपने वाहुर्बल और पराक्रम से
क्रमशः अंशेष देश जीत कर, वेत्रवती नदी के
तीर पर, विदिशा नाम नगरी में अकण्टक
राज करता था । एक दिन प्रातःकाल राजा अपने मन्त्रो कुमार-
पालित और और, और राजाओं के संग सभा में बैठे थे कि
द्वारपाल ने आकर निवेदन किया—“पृथ्वीनाथ ! दक्षिण देश से
एक तोता लिए हुए चाण्डालकन्या आई है । वह कहती है कि
‘महाराज सब रत्नों के आकर हैं । इस हेतु मैं यह पद्मिनी उनके
चरण-कमल में अर्पण करने को लाई हूँ ।’ वह द्वार पर खड़ी है ।
आज्ञा हो तो आकर आपके पदारविन्द का दर्शन करे । राजा
प्रतिहारी का वाक्य सुन अचम्भित हो सभासदों की ओर देख
कर बोले—“कुछ हानि नहीं, आने दो ।” प्रतिहारी राजाज्ञा
पाते ही चाण्डालकन्या को ले आया ।

कन्या ने सभामण्डल में प्रवेश करते ही देखा कि ऊपर एक
मनोहर चंदवा टंगा है और उसके चारों ओर मोती की झालर
झुगी है और नीचे राजा हेममय आभरण धारण किये एक

मणिमय सिंहासन पर सुशोभित हैं और उनके चारों ओर सभासद लोग अपने अपने उचित स्थान पर बैठे हैं । इस समय की शोभा ऐसी जान पड़ती थी जैसे सुमेरुगिरि अपर भूधरमण्डल के मध्य अपूर्व श्री धारण किये बैठा है । चाण्डालकन्या सभा की शोभा देख कर बड़े विस्मित हुई और राजा की चितवन अपनी ओर फेरने की इच्छा से, एक बाँस की छड़ी से जो उसके हाथ में थी उसने सभाभूमि में मारा तो जङ्गल में ताल-कन के गिरने से जैसे हाथी सब उसी की ओर देखने लगते हैं उसी भाँति छड़ी का शब्द सुन कर सम्पूर्ण सभासदादि चाण्डाल-कन्या की ओर देखने लगे । राजा ने भी उसी ओर दृष्टिपात कर के देखा कि एक बूढ़ा मनुष्य और पीछे पिंजरा हाथ में लिए एक बालक और उन दोनों के मध्य में एक परम सुन्दर सुकुमार कन्या आती है । कन्या का रूपलावण्य ऐसा था कि वह किसी भाँति चाण्डालकुल की नहीं जान पड़ती थी । राजा उसकी अनु-पम सुन्दरता और सुकुमारता को देख बड़े विस्मित हुए और एक-टक देखने लगे और अपने मन में तर्कना करने लगे कि विधाता ने यह सोच कर कि लोग इस कन्या को हीन जाति की जान कर न छुएंगे, इसको इतना रूपलावण्य दिया है । यदि ऐसा न होता तो ऐसी कान्ति और रूप का होना भी अनहोना है । जो हो, चाण्डाल के घर में ऐसी रूपवती का सम्भव असम्भव और बड़े आश्चर्य का विषय है । राजा इस प्रकार कल्पना कर ही रहे थे कि उसी समय कन्या ने आकर विनयपूर्वक प्रणाम किया । बूढ़ा हाथ में पिंजरा लेकर सन्मुख खड़ा होकर विनीतवचन से

कहने लगा, “महाराज ! यह सूत्रा सकल शास्त्रवेत्ता, राजनीतिज्ञ, सद्गुता, चतुर, सकलकलाभिज्ञ, महाकवि और गुणो है । जो विद्या मनुष्यों को कठिनता से आती है वह इसके कण्ठाग्र बसती है । इसका नाम वैशम्पायन है । संसार के समस्त राजाओं की अपेक्षा आप बड़े विद्वान् और गुणग्राही हैं । इसलिए मैं यह शुक पक्षी आपके पास लाया हूँ । यदि आप अनुग्रह कर इसे ग्रहण करें तो यह कृतार्थ हो जाय ।” यह कह कर पिँजरा रख बूढ़ा कुछ दूर जा खड़ा हुआ ।

सूत्र ने पिँजरे के भीतर से अपना दहिना चरण उठा कर “राजा की जय हो” ऐसा आशीर्वाद दिया । राजा पक्षी के मुख से अर्थयुक्त वाक्य सुन कर बड़े विस्मित हुए और कुमारपालित को सम्बोधन कर कहने लगे—देखो मन्त्रो ! पक्षी भी मनुष्य की तरह शुद्ध वर्णेच्छारण और मधुर स्वर से बात कर सकते हैं । मैं जानता था कि ये केवल आहार, निद्रा और भय जानते हैं, बुद्धिशक्ति और वाक्शक्ति कुछ भी नहीं रखते । परन्तु शुक का व्यवहार देख कर हमको बड़ा आश्चर्य होता है । प्रथम तो यह आश्चर्य है कि पक्षी मनुष्य की तरह बात करता है, दूसरे यह कि जैसे ब्राह्मण दहिना हाथ उठा कर आशीर्वाद देते हैं उसी भाँति शुक भी दहिना चरण उठा कर यथारीति आशीर्वाद देता है । कैसा आश्चर्य है ! इसकी बुद्धि और मनोवृत्ति भी मनुष्य के समान है ।

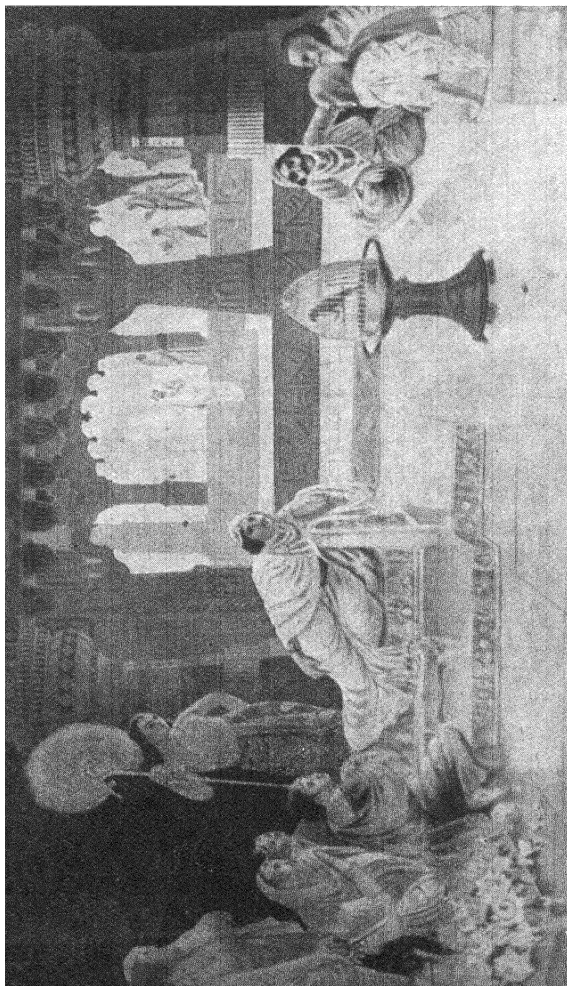
राजा की बात सुन कर मन्त्रो ने कहा—महाराज ! पक्षी यदि मनुष्य की तरह बोल सकता है तो इसमें कुछ आश्चर्य

नहीं; क्योंकि लोग तोता, मैना इत्यादि पक्षियों को बड़े श्रम से शिक्ता देते हैं और वे भी पूर्व जन्म के संस्कार के कारण अनायास ही सीख लेते हैं । पहले वे भी मनुष्य की भाँति बोल सकते थे पर अग्नि के शाप से जड़ हो गये हैं । यही बात चोत होते होते सभाभङ्गसूचक मध्याह्नकाल का शङ्ख बजा । स्नान का समय निकट जान राजा ने सभास्थित अपर राजाओं को विनीत वचन कह कर बिदा किया, चाण्डालकन्या को भी विश्राम करने की आज्ञा दी और ताम्बूलवाहक से कहा कि तुम वैशम्पायन को महल में ले जाओ और स्नान भोजन कराओ ।

उसके अनन्तर वे आप भी सिंहासन से उठ कर राजभवन में गये और स्नान, पूजा आदि करके शयनागार में शय्या पर लेटे और उन्होंने प्रतिहारी को वैशम्पायन को लाने की आज्ञा दी । प्रतिहारी तुरन्त वैशम्पायन को शयनागार में ले आया ।

राजा ने पूछा, हे वैशम्पायन, तुम्हारा जन्म किस प्रकार से और किस देश में हुआ ? तुम कोई सिद्ध हो या कोई महापुरुष हो कि तप के बल से कलेवर बदले देश देश में भ्रमण करते हो या किसी देवता की आराधना करके तुमने वर पाया है ? पहले तुम कहाँ रहते थे ? किस भाँति चाण्डाल के हाथ में पड़ कर पिंजरे में बन्द हुए ? हमको इन सब बातों के सुनने की बड़ी इच्छा है सो तुम अपना सम्पूर्ण वृत्तान्त कह कर हमारे चित्त का उद्वेगरहित करो ।

वैशम्पायन ने राजा की यह बात सुन कर कहा कि यदि आपको सुनने की बड़ी अभिलाषा है तो सुनिए । भरतखण्ड के



शुक्रशूद्रक-संवाद

मध्य विन्ध्याचल के निकट एक विन्ध्यानन नाम जङ्गल है । उस जङ्गल में गोदावरी नदी के तीर पर अगस्त्य ऋषि का आश्रम था । जहाँ त्रेता में भगवान् रामचन्द्र पिता के आज्ञानुसार सीता और लक्ष्मण समेत पञ्चवटी में पत्तों की कुटी बना कर कुछ दिन टिके थे, जहाँ दुष्ट दशानन के भजे हुए मारीच नामक निशाचर ने सोने का मृग बन कर सीता-हरण कराया था, जहाँ जानकी-वियोग से व्याकुल राम और लक्ष्मण सजलनयन और गदगद वचन से नाना प्रकार का विलाप और अनुताप करते हुए वहाँ के पशु, पक्षी और लता-द्रुमादि को भी दुःखित करते थे, उसी आश्रम के समीप एक पम्पा नाम सरोवर है जिसके पश्चिम ओर रामचन्द्र ने तीर से सात ताल की वेध कर बाली को मारा था । उसी के समीप एक बड़ा भारी शालमली का वृक्ष है । उसकी जड़ में एक बड़ा अजगर बहुत दिन से रहता था । उस वृक्ष की शाखा इतनी लम्बी और छतनार थी मानो गगनमण्डल को नापने के लिए हाथ फैलाये हो । उसकी पेड़ो इतनी ऊँची थी जैसे कोई पृथ्वी के चतुर्दिक् देखने को सिर उठाये हो । उस वृक्ष के खोखलों में फुनगी पर पत्तों का खोता बना कर अनेक प्रकार के शुक, सारिका और और और अनेक पक्षी सुख से वास करते थे । वह वृक्ष बड़ा प्राचीन था और पतझड़ होने पर भी उसमें रहनेवाले पक्षियों के बच्चेों के रात दिन उसमें रहने से वह पल्लवमय दीख पड़ता था । उस पर के पङ्कुरहित बच्चे कभी कभी उसके फल समान जान पड़ते थे । पक्षी सब अपने खेतों में सोते और प्रातःकाल आहार की खोज

में गोल बाँध कर आकाशमार्ग में उड़ जाते । उस समय ऐसी शोभा जान पड़ती थी जैसे कोई हरी दूब वाला खेत उड़ा चला जाता हो । वे सब दिग्दिगन्तर में जाकर आहार एकत्र कर आप भी खाते और अपने बच्चों के लिए मुँह में भर भर कर ले आते थे ।

उसी प्राचीन वृत्त के एक खोङरे में मेरे माता-पिता भी रहते थे । दैवसंयोग से मेरी माता गर्भवती हुई और मेरे जन्मोपरान्त प्रसव की पीड़ा से मर गई । पिता हमारे बड़े बूढ़े थे और स्त्री के मरने से यद्यपि बड़े व्याकुल और शोकचित्त हुए परन्तु प्रीति-वश शोक परित्याग कर वे हमारे लालन पालन में दिन व्यतीत करने लगे । उनको चलने की कुछ शक्ति न थी तो भी धीरे धीरे उस वृत्त के नीचे उतर कर जो कुछ आहार-द्रव्य पृथ्वी पर गिरा हुआ मिलता उसे लाकर वे मुझे खिलाते और बचा खुचा आप खाते थे । एक समय प्रातःकाल जब चन्द्रमा अस्त हो गया और पक्षी सब चहचहा रहे थे और सूर्य के उदय से गगन-मण्डल रक्तवर्ण हो रहा था और आकाशस्थित अन्धकाररूपी धूल सूर्य की किरणरूपी भाडू से परिष्कृत हो गई और सप्तऋषि लोग स्नानादि के निमित्त मानमरोवर के तट पर उतरे; उसी समय उस वृत्त में रहनेवाले पक्षी भी सब अपने अपने इच्छानुसार देश-देशान्तर को चले । उनके बच्चे चुपचाप खेतों में बैठे थे और मैं भी अपने पिता के पास बैठा था कि एकाएकी मृगया का शब्द सुनने में आया । कहीं सिंह बड़े स्वर से गरज रहे थे; कहीं घोड़े, हाथी और मृग आदि बनैलें पशु वन को मथन कर रहे थे; कहीं

बाघ, रीछ और सूअर आदि भयानक जाव दाड़ रहे थे; कहीं महिष आदि बड़े बड़े जन्तु बड़े वेग से इधर उधर घूम रहे थे; उनके शरीर के धक्के से वृक्ष लतादि टूट रहे थे । हाथियों की चिंघाड़ से और घोड़ों के हिनहिनाने से, सिंह के गर्जन से और पक्षियों के कलरव से वह कोलाहलमय हो गया था और पेड़ सब भय के मारे काँपते थे । मैं उस कोलाहल को सुन कर बहुत डरा और काँपने लगा और अपने पिता के डैने के नीचे जा छिपा और वहाँ से व्याधों की बातें सुन रहा था । वे कहते थे कि देखो वह सूअर जाता है, वह हरिन दौड़ता है और वह हाथी जाता है इत्यादि ।

जब मृगया का कोलाहल बन्द हुआ और जङ्गल में सन्नाटा हा गया तब मैं धीरे धीरे पिता के डैने के नीचे से निकल कर खाते के बाहर सिर निकाल कर, जिधर शब्द होता था उसी ओर देखने लगा, तो क्या देखता हूँ कि यमराज के भाई ऐसे, पाप के सारथि ऐसे, नरक के द्वारपाल ऐसे विकट रूप, एक सेनापति के सङ्ग, यमदूत की तरह, बहुत से व्याधे चले आते हैं । उनको देख कर साक्षात् भूतमध्यस्थ भैरव अथवा दूतसंयुक्त कालान्तक का स्मरण होता था । मृग की उन्मत्तता से उनके दोनों नेत्र रक्तवर्ण हो रहे थे, समस्त शरीर में रुधिर लगा हुआ था और सङ्ग में बहुत से बड़े बड़े कुत्ते थे । उन्हें देखने से यह जान पड़ता था जैसे कोई भयङ्कर असुर जङ्गल के पशुओं को पकड़ पकड़ कर खाता चला आता है । व्याधों को देख कर मैंने मन में विचार किया कि ये कैसे दुष्कर्म और दुराचारी हैं । जङ्गल इनका घर है,

मद्य, मांस आहार है; धनुष धन, कुत्ते मित्र और बाघ, सिंह आदि हिंसक जन्तुओं के साथ वास और पशुओं की प्राणहत्या इनकी जीविका है । इनके हृदय में दया का नाम भी नहीं है और न इन्हें अधर्म का कुछ भय है, सत्कर्म तो ये जानते ही नहीं कि किसे कहते हैं । वे लोग सदा धर्मपथ को छोड़ निन्दित और घृणित बने रहते हैं ।

मैं इस प्रकार तर्कना कर रहा था कि वे मृगया की थकावट को दूर करने की इच्छा से उसी वृक्ष के नीचे आ बैठे जिस पर मैं रहता था । एक निकटवर्ती सरोवर से जल और मृणाल लाकर उन्होंने जलपान किया और फिर वे चले गये ।

उम सेना में से एक वृद्ध का उस दिन कुछ आखेट नहीं मिला था । वह उनका सङ्ग छोड़ उसी वृक्ष के नीचे खड़ा रहा । जब वे सब चले गये तब उसने अपनी लाल लाल आँखों से एक बेर वृक्ष को नीचे से ऊपर तक देखा । उसके देखने ही से उसमें के बच्चों के प्राण उड़ गये । हाय ! दुष्टों को कोई कर्म असाध्य नहीं है । जैसे निसर्ग द्वारा अटारी पर चढ़ने में किसी को क्लेश नहीं होता उसी तरह वह दुष्ट काँटों से घिरे हुए वृक्ष पर बड़ी सरलता से चढ़ गया और एक एक खाते में से बच्चों को निकाल निकाल उनका प्राण ले ले कर पृथ्वी पर पटकने लगा । पिता हमारे वृद्ध तो थे ही, इस अचिन्तित आपत्ति के आने से वे बड़े दुखी हुए । भय से उनका शरीर काँपने लगा और तालू सूख गया । वे इधर उधर देखते थे, परन्तु प्राणरक्षा का कोई उपाय देख नहीं पड़ता था । तब वे हमको अपने डैने के नीचे लेकर

छाती के नीचे छिपा कर बैठे । उस समय मैंने देखा कि उनके नेत्रों से आँसू की धारा बही चली जाती थी । उस व्याधे ने धीरे धीरे हमारे खोते के पास के सब बच्चों को मारते हुए अपने कर-कराल सर्प द्वारा मेरे पिता को भी पकड़ा । यद्यपि पिता ने उसको जहाँ तक बन पड़ा ठोरों से भली भाँति मारा और काटा, परन्तु उसने छोड़ा नहीं, वरन् खोते से निकाल कर खूब मारा और मार कर पृथ्वी पर फेंक दिया । मैं भय के मारे पिता के पङ्क्त में चिपट गया था, इससे उसने मुझे देखा नहीं । उस वृक्ष के नीचे सूखे पत्तों का एक ढेर लगा था । मैं उसी पर गिरा और मुझे कुछ चोट न आई ।

जब तक बालक अधिक दिन का नहीं होता तब तक स्नह का सञ्चार उसको नहीं होता । पर भय जन्मदिन से ही उत्पन्न होता है । इस हेतु मुझको पिता के मरने का कुछ शोच तो नहीं हुआ परन्तु मैं डर से व्याकुल होकर भागने की चेष्टा करने लगा । मैं अपने कम्पिब चरण और छोटे छोटे पङ्क्तों की सहायता से गिरता पड़ता चला जाता था और मन में यह सोचता था कि अब तो कालभ्रास से बचा । मैं जाकर एक निकटवर्त्ती तमाल वृक्ष की जड़ में छिप रहा । इतने में वह व्याधा वृक्ष से उतर कर सब मरे हुए पक्षिशायकों को एक लता से बाँध, जिधर वह सेना गई थी उसी ओर, चला गया ।

दूर से गिरने से और भय के कारण मेरा शरीर थर थर काँपता था और पिपासा से कण्ठ सूखा जाता था । यह सोच कर कि अब वह व्याधा दूर चला गया होगा, मैंने सिर निकाल कर

चारों ओर देखा और मैं डरते डरते धीरे धीरे चलने का उद्योग करने लगा । गिरते पड़ते चलते चलते शरीर मृत्तिकालिप्त होगया और साँस फूटने लगा । उस समय मैंने मन में सोचा कि चाहे किसी को कितना क़ेश क्यों न हो पर वह जीवनाशा नहीं छोड़ता मैंने अपने नेत्रों से देखा कि पिता स्वर्गलोक को सिधारे और मैं स्वतः इतने ऊँचे से विकलेन्द्रिय होकर गिरा । पर अभी तक जीने की आशा कैसी मन में बैठी है । हाय ! हमारे ऐसा निर्दय कौन है । माता जन्म समय मर गई, पिता पत्नोविरह को त्याग हमारे लालन-पालन में नियुक्त थे । वे बुढ़ापे में भी हमारे लिए इतना क़ेश सहते थे परन्तु मैं सब भूल गया । मुझ ऐसा कृतघ्न और दूसरा नहीं है । अपने ऐसा निर्दयी और दुराचारी भी मैं किसी को नहीं देखता । कैसे आश्चर्य की बात है ! इसी अवस्था में मुझको प्यास लगी । दूर से सारस और हंस का शब्द सुन कर मैंने अनुमान किया कि सरोवर दूर है । कैसे वहाँ पहुँचूँगा और जलपान करके अपनी पिपासारूपी अग्नि को शान्त करूँगा ।

इसी सोच विचार में दोपहर हो गई और सूर्य अग्रिमय किरण से संसार को उत्तप्त करने लगा । मार्ग लोहे की चढ़र की भाँति उष्ण हो गया और बालू में मेरा पाँव भुनने लगा । यद्यपि मेरी मरने की कोई इच्छा न थी, पर उस समय के क़ेश से व्याकुल होकर वारंवार ईश्वर से मेरी यही प्रार्थना थी कि गण ले ले । आँख के सामने अँधेरा छा गया और प्यास से कण्ठ पुष्क हो गया और अङ्ग शिथिल होगये । वहाँ से थोड़ी ही दूर पर नावालि नाम के एक महातपी ऋषि रहते थे । उनके वीर पत्र हारीत

उसी ओर से सरोवर स्नान को जाते थे । उनका तेज ऐसा था जैसे सूर्य । माथे पर जटा, ललाट में त्रिपुण्ड्र, कान में स्फटिक माला, बायें हाथ में कमण्डल, दहिने में दण्ड, कन्धे पर कृष्ण मृग-छाला और गले में यज्ञोपवीत मुशोभित था । उनकी शान्त मूर्ति देख कर ऐसा जान पड़ता था जैसे शान्तिसागर श्रीपार्वतीवल्लभ मेरी रक्षा को चले आते हैं । साधु लोगों का चित्त कृपालु होता ही है, मेरी वह दशा देख कर उनके मन में दया आई । उन्होंने मेरी ओर सङ्केत करके टढ़लू से कहा—देखो यह एक सूए का बच्चा मार्ग में पड़ा है । ऐसा जान पड़ता है कि इसी शात्मली के वृत्त पर से गिरा है । इसका साँस फूल रहा है और नेत्र बन्द हो रहे हैं । जान पड़ता है कि यह बड़ा प्यासा है । यदि थोड़ा देर जल न मिलेगा तो यह अवश्य मर जायगा । चलो हम इसे सरोवर पर ले चल कर जल पिलावें । सम्भव है कि बच जाय । यह कह कर उन्होंने मुझको मार्ग में से उठा लिया । उनके स्पर्श मात्र से मेरा शरीर शीतल हो गया । इसके अनन्तर उन्होंने मुझे मानस तीर पर ले जाकर मेरा मुँह खोल अपनी उँगली से जल पिलाया । जल पीने से मेरी पिपासाग्नि शान्त हुई । फिर उन्होंने मुझे स्नान करा के नलिनीपत्र की शीतल छाया में बैठा दिया । आप भी स्नान कर सूर्य को अर्घ्यदान दे ओदा बख उतार पुनीत नवीन वस्त्र धारण कर मुझको ले वे तपोवन की ओर धीरे धीरे चले ।)

तपोवन के निकट पहुँच कर मैंने देखा कि वहाँ के वृत्त सब कुसुमित और पल्लवित हो रहे थे और फलभार से भूमिस्पर्श करते थे । इलायची और लवङ्ग की सुगन्ध चारों ओर छा रही थी । मधुप

भक्तकार करते हुए एक पुष्प से दूसरे पुष्प पर भ्रमण कर रह थे । अशोक, चम्पक, किंशुक, मल्लिका और मालती आदि नाना प्रकार के वृक्ष और लता के एकत्र होने और उनकी डालियों के मिल जाने से स्थान स्थान पर सुन्दर सुन्दर रमणीय गृह बन गये थे जिनमें सूर्य की किरण प्रवेश नहीं कर सकती थी । बड़े बड़े ऋषि लोग मन्त्र पढ़ पढ़ कर होम कर रहे थे और अग्नि की ज्वाला से वृक्षों की पत्ती मलिन हो रही थी और वायु होमगन्धमय होकर धीरे धीरे बह रही था । सब मुनिकुमार, कोई तो उच्च स्वर से वंद पढ़ रह थे और कोई शान्ति भाव से धर्मशास्त्र पढ़ रहे थे । मृगगण निःशङ्क चारां और भ्रमण कर रहे थे ।

तपोवन को देख कर मैं बड़ी प्रसन्न हुआ । उसके भीतर मैंने देखा कि रक्तपल्लवसम्पन्न रक्ताशोक वृक्ष के नीचे एक पवित्र स्थान में वृंत के आसन पर महातपी जावालि ऋषि बैठे हैं और उनके आन पास और और मुनि लोग बैठे हैं । जावालि ऋषि बड़े बूढ़े थे और उनके बाल और रोये सब पक गये थे; ललाट में खली पड़ गई थी; सिर नीचा हो गया था; पञ्जर और मस्तक की हड्डि निकल आई थी और श्रवणसम्पुट श्वेत लोम से ढक गये थे । उनकी मूर्ति देखने से जान पड़ता था कि वे करुणारस के प्रवाह, क्षमा और सन्तोष के आधार, शान्तिरूपी लता के मूल, क्रोध-भुजङ्ग के महामन्त्र, सर्वेष्वदर्शक और सत् स्वभाव के आश्रय हैं । उनको देख कर मेरे मन में एक बेर भय और विस्मय दोनों उत्पन्न हुए और मैंने कहा कि इनका कैसा प्रभाव है ! इनके प्रभाव से वन में हिंसा, द्वेष, वैर और मात्सर्य आदि का नाम भी नहीं है ।

हिरन के बच्चे सिंह के बच्चों के सङ्ग सिंहिनी का दूध पीते हैं । हाथी और सिंह परस्पर प्रेम से खेल रहे हैं । मृग सब धीर-चित्त होकर शृगाल के सङ्ग चर रहे हैं और सूखे वृक्ष भी कुसुमित हो रहे हैं, मानो सत्ययुग कलियुग के भय से भाग कर इसी तपोवन में आ छिपा है । वृक्षों की शाखाओं में मुनियों की छाला, कमण्डल और माला लटक रही थी और बैठने के लिए वेदी बनी थी, मानो सब वृक्ष भी तपस्वी का वेष धारण करके तपस्या करते थे ।

ऋषि-कुमार मुझको उसी रक्षाशोक के नीचे रख अपने पिता के चरणकमल की वन्दना कर, स्वतन्त्र हो, एक आसन पर बैठे । सब ऋषिकुमारों ने मुझको देख कर बड़ा आश्चर्य माना और हारीत से पूछा कि हे सखा, इस शुक के बच्चे को तुमने कहाँ पाया ? उन्होंने कहा कि जब मैं स्नान करने को जाता था तब मैंने देखा कि यह अपने खोते से गिर कर पृथ्वी पर लोट रहा था । इसकी वह दशा देख कर मुझे दया आई परन्तु जिस वृक्ष पर से यह गिरा था उस पर का चढ़ना कठिन समझ मैं इसे अपने सङ्ग लेता आया । अब चाहिए कि हम सब यत्नपूर्वक इसकी रक्षा करें ।

हारीत की यह बात सुन कर जावालि ऋषि ने मेरी ओर देखा । उनकी दृष्टि पड़ते ही मैंने अपने को कृतार्थ जाना । उन्होंने परिचित की भाँति बारम्बार मेरी ओर देख कर कहा कि यह अपने किये का फल भोग रहा है । महर्षि त्रिकालदर्शी थे । तपस्या के बल से उनको भूत, भविष्य और वर्त्तमान समान जान पड़ता था और ज्ञान-दृष्टि द्वारा सम्पूर्ण संसार उनके करतब-

पदार्थ की भाँति था । सब लोग उनका प्रभाव जानते थे इस लिए किसी को अविश्वास नहीं हुआ, वरन् सब व्यग्र होकर पूछने लगे कि महाराज, इसने क्या दुष्कर्म किया है और क्या पाप कर उसका फल भोग रहा है ? पूर्वजन्म में यह कौन जाति का था और किस प्रकार इसने पक्षिकुल में जन्म लिया ? कृपा कर इन सब बातों का वर्णन करके हमारो उद्देगाग्नि को शान्त कीजिए ।

महर्षि ने कहा कि निस्सन्देह इसकी कथा उद्देगजनक है, परन्तु थोड़े समय में समाप्त नहीं हो सकती । अब सन्ध्या होती है । मुझको स्नान करना है और तुम लोगों को भी देवार्चन का समय हो गया । आहारादि सम्पूर्ण नित्यक्रिया समाप्त करके निश्चिन्त हो कर बैठो तो मैं इसका आद्योपान्त वर्णन करूँ । ऋषि की यह बात सुन कर मुनिकुमार सब स्नान, पूजा आदि कर्मों में नियुक्त हुए ।

अब सन्ध्या हो गई । मुनिकुमारों ने रक्तचन्दन से अर्घ्य दिया था । वह उनके अङ्ग में लग कर कैसी शोभा देता था जैसे लोहितवर्ण सूर्य । तमारिकिरणों ने धीरे धीरे पृथ्वी से कमलवन में और कमलवन से वृक्षों के शिखर पर और वहाँ से पहाड़ों की चोटी पर जाकर उसको स्वर्णवर्ण किया । वायुसञ्चलित त्रपाणि द्वारा वृक्ष सब पक्षियों को अपने अपने खेतों में बुलाने लगे और विहङ्गों ने भी कलरव करके उत्तर दिया । मुनि सब हाथ बाँध कर सन्ध्यावन्दन करने लगे । कामधेनु के दुहे जाने का शब्द चारों ओर सुनाई देने लगा ।

हरी हरी कुशा अग्निहोत्रवेदी पर बिछाई गई । तिमिरनाशक के भय से छिपा हुआ तिमिर प्रकट हुआ । सन्ध्या के क्षय होने के शोक से दुःखित रात्रि अन्धकाररूपी मलिन वस्त्र धारण करके दृष्टिगोचर हुई । गृहरूपी चोर भी जो सूर्य के प्रताप से छिपे थे बाहर निकले । पूर्व दिशा में चन्द्रमा का थोड़ा थोड़ा प्रकाश होने लगा । उसकी शोभा ऐसी जान पड़ती थी जैसे प्रातम के मिलने से पूर्व दिशा मुसकुरा रही हो । पहले कलामात्र फिर आधा और क्रमशः समस्त-मण्डल सुधाधर का प्रकाश हुआ और अन्धकार का नाश हुआ । कोई फूली और मन्द मन्द समीर के बहने से मृग आह्लादित हुए । जीव-जन्तु आनन्दमय, कुमुद गन्धमय और तपोवन प्रकाशमय हुआ ।

हारीत भोजन आदि समाप्त करके मुझे ले ऋषिकुमारों के साथ पिता के समीप जा पहुँचे । मैंने देखा कि वे एक बेत के आसन पर बैठे हैं और जालपाद नामक शिष्य पङ्खा झूल रहा है । पिता के सम्मुख हाथ जोड़ कर हारीत खड़े हुए और बोले कि हे पिता, हम लोगों को इस सूए के बच्चे का वृत्तान्त सुनने की बड़ी इच्छा है । यदि आप कृपा कर वर्णन करें तो हम सब बड़े कृतार्थ हों ।

महर्षि ने ऋषिकुमारों की वह दशा देख कर कथा आरम्भ की ।



कादम्बरी ।

कथारम्भ


 वन्तिदेश में एक उज्जयनी नाम नगरी है जहाँ त्रिभुवन-सर्ग-स्थिति-संहार-कारी, महाकालाभिधान, भगवान् देवादिदेव महादेव रहते थे। उसी स्थान में सिन्धु नदी तरङ्गरूपी भृकुटि विस्तार-पूर्वक भागीरथी का उपहास करती हुई बड़े वेग से बहती है। वहाँ एक बड़े यशस्वी, तेजस्वी और प्रतापी तारोपीड नामक राजा रहते थे। वे अर्जुन की भाँति अपनी भुजा के बल से भूतल को वश करके सुख से राजसम्भोग करते थे। लक्ष्मी भी उनके गुणों से वशीभूत होकर कमल-वन को छोड़ और नारायण का हृदय परित्याग कर उन्हीं के शरीर में आ लिपटी थी। सरस्वती भी ब्रह्मा के मुख में आ रहना क्लेशकर जान उन्हीं के मुख में वास करती थी। उनका मन्त्री शुकनास, जाति का ब्राह्मण, सकल शास्त्र का जाननेवाला, नीतिशास्त्र में कुशल, बुद्धिमान, धीरप्रकृति, सत्यवादी और जितेन्द्रिय था। उसकी वीरपत्नी का नाम मनोरमा था। जैसे इन्द्र को बृहस्पति, नल को सुमति, दशरथ को वशिष्ठ और चन्द्रमा को विश्वामित्र उपदेश देते थे उसी प्रकार शुकनास भी राजा को राजकार्य में उपदेश देता था। उसकी बुद्धि ऐसी तीक्ष्ण थी कि कोई कैसा ही दुर्घट

काम हो परन्तु वह कभी विचलित न होता । बालकपन से स्वाभाविक प्रीति होने के कारण राजा भी प्रत्येक विषय में उसका विश्वास करते थे और वह निष्कपटचित्त होकर राजा का हितसाधन करता था । पृथ्वी शत्रुहीन हो गई थी और परिजन लोगों को उत्पात और क्लेश गूलर का फूल हो गया था । राजा राज्यभार शुकनास को सौंप और सब विषयों से निश्चिन्त हो युवावस्था का सुख भोग कर रहे थे । कभी जलविहार, कभी वनविहार और कभी नृत्य-राग-रङ्गादि में काल व्यतीत करते थे । शुकनास राज-काज ऐसी उत्तम रीति से करता था कि सब प्रजा उसके अपचपात और सद्विचार से वशीभूत हो गई थी ।

यद्यपि तारापीड़ इस प्रकार सुख से कालक्षेप करता था, परन्तु पुत्रहीन होने से वह मन में बड़ा दुखी रहता । सन्तान के न होने से संसार सूना और जीवन भारमात्र जान पड़ता है और मनुष्य अपने को सहायहीन, निराश्रय और हतभाग्य समझता है । वास्तव में संसार उसको असार और अन्धकारमय दीख पड़ता है । राजा की पत्नी का नाम विलासवती था । जैसे काम-देव की रति और शिव की पार्वती परम प्रणयिनी हैं उसी प्रकार विलासवती भी राजा की प्रीतिपात्र थी । एक समय रानी अतिशय दुःखित और क्लेशासक्त महल में बैठी थीं । राजा ने आकर देखा कि रानी बायें हाथ पर कपोल रखे मलिन-वदन होकर रो रही हैं । अङ्ग के भूषण सब भूमि में फेंके हैं, शरीर का कुछ ध्यान नहीं है और सखी सब चुपचाप अधोमुखी चतुर्दिक् बैठी हैं और वृद्धा स्त्री सब दूर से सन्तोष दे रही हैं । राजा जब

भीतर आये रानी ने आसन से उठ कर उनका सत्कार किया । राजा को देख कर उनका चित्त और भी दुखी हुआ और आँखों से आँसू की धारा चलने लगी । रानी का यह अकारण शोक और रोदन देख कर राजा अनंक प्रकार की शङ्का करने लगे । फिर आसन पर बैठ कर और अपने वस्त्र से आँसू पोंछ कर मीठे स्वर से उन्होंने पूछा कि हे प्रिया, तुम क्या बायें हाथ पर मस्तक रखे और मलिन-वदन होकर रोदन करती हो ? तुम्हारे दुःख का कारण न जानने से हमको बड़ा क्लेश होता है । क्या हम से कोई अपराध हुआ ? अथवा और किसी ने द्विशिर होना चाहा है ? जो हो अपने शोक का कारण वर्णन करके हमारे उद्वेग को दूर करो ।

विलासवती ने राजा के प्रश्नों का उत्तर न दिया, बरन वह और भी व्याकुल होकर रोने लगी । रानी की ताम्बूलवाहिनी हाथ बाँध कर बोली—महाराज आपने कोई अपराध नहीं किया है और दूसरा अपराध करनेवाला कौन है । रानी के रोने का कारण सुनिए । सन्तान के मुख देखने का सुख न होने से रानी कई दिन से दुःखित हैं । कहने से महाराज को दुःख होगा इसलिए मन का दुःख मन में छिपा रक्खा था । आज चतुर्दशी है । महादेव की पूजा करके वे महाकाल के मन्दिर में गई थीं । वहाँ महाभारत का पाठ होता था । उसमें उन्होंने सुना कि सन्तानविहीन मनुष्य की गति नहीं होती । पुत्र न होने से नरक से उद्धार का कोई उपाय नहीं है । पुत्रविहीन मनुष्य को इस लोक में सुख हो परन्तु परलोक में परित्राण की सम्भावना नहीं । उसका जीवन,

धन, ऐश्वर्य सब निष्फल है । ये बातें इनके मन में धँस गईं और ये उसी समय से उन्मत्ता हुई हैं । घर आने पर सबों ने नाना प्रकार से समझाया और भोजनादि करने के लिए बहुत कुछ कहा, पर किसी प्रकार से ये शान्त न हुईं और न इन्होंने भोजन ही किया । तब से ये किसी की बात का उत्तर नहीं देतीं, और किसी से वार्तालाप भी नहीं करतीं । केवल विषण्णमुख बैठो रोती हैं । अब जो कर्तव्य जानिए कीजिए ।

ताम्बूलवाहिनी की बात सुन कर राजा कुछ देर चुप रहे, फिर लम्बी साँस लेकर बोले—हे देवी ! दैवसम्बन्धो विषय में शोक करना उचित नहीं है । मनुष्य चाहे कितना ही यत्न करे परन्तु जब तक ईश्वर प्रसन्न नहीं होता, मनोरथ सिद्ध नहीं हो सकता । ऐसा मैंने कौन पुण्य कर्म किया है कि जिसके बल से पुत्र को हृदय लगा कर शरीर को शीतल करने वा मुख-कमल को देख कर नेत्र को सफल करने वा मधुर सुर सुन कर श्रवण पवित्र करने की आशा रखूँ । जन्मान्तर में न जाने हमने कितने पाप किये हैं उम्मी से इतना दुःख भोग रहे हैं । जब तक दैव अनुकूल न हो किसी अभीष्ट के सिद्ध होने की सम्भावना नहीं है । चित्त लगा कर गुरु की भक्ति, देवपूजा और ऋषियों की सेवा करो और स्थिर और निष्कपट मन से धर्म-कर्म का अनुष्ठान करो । पुराणों में सुना है कि मगधदेश का राजा बृहद्रथ पुत्र की लालसा से चण्डकौशिक की आराधना करता था और उनके प्रभाव से एक जरासन्ध नामक बड़ा प्रतापी पुत्र उत्पन्न हुआ । राजा दशरथ ने भी शृङ्गऋषि को प्रसन्न करके राम,

लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न नाम के चार महाप्रतापी पुत्र पाये । ऋषि लोगों की सेवा कभी निष्फल नहीं होती । उसका फल निस्सन्देह मिलता है । दृढ़सङ्कल्प और एकान्तचित्त होकर भक्तिपूर्वक देव और ऋषियों की अर्चना करो । उसी से मनोरथ सिद्ध होगा । न जाने कितने दिन में वह शुभ दिन आवेगा जिस दिन स्नेहमय पुत्र के मुख सुधाधर को देख कर जीवन और नयन दोनों को कृतार्थ करूँगा और प्रजागण आनन्दमय होंगे और नगर प्रमोदमय हो कर नृत्य, गीत और वाद्य के कोलाहल से परिपूर्ण होगा । किस दिन पुत्ररूपी चन्द्र के उदय से रानी का हृदयरूपी गगन सुशोभित होगा ? पुत्रविरह इस समय बड़ा क्लेश देता है ! राज्य और ऐश्वर्य सब निष्फल जान पड़ता है; परन्तु असाध्य विषय जान कर तथा शोक और दुःख करना व्यथा समझ के धीरज धारण करके मैं स्वेच्छानुसार काल-यात्रा करता हूँ । इस भाँति नाना प्रकार के सन्तोषवाक्य कह कर राजा अपने हाथ से रानी के नेत्र पोछने लगे । बहुत काल पर्यन्त महल में रह कर वे बाहर गये ।

राजा रनिवास से बाहर आये । रानी ने शान्त होकर स्नान भोजनादि किया, जो आभूषण पृथ्वी पर फेंके थे उनको उठा कर फिर पहिन लिया और उसी दिन से वे देवता की पूजा, ब्राह्मण की सेवा और गुरुजन की अर्चना में नियुक्त हुईं । देवता के कर्म में लिप्त होकर रानी प्रतिदिन चण्डिका को धूप दशाङ्ग आदि सुगन्ध द्रव्य चढ़ाने को जाया करतीं और रात्रि को वहीं आसन बिछा कर सोया करतीं । प्रतिदिन प्रातःकाल ब्राह्मण को स्वर्णपात्र दान

देतीं और कृष्णपत्त की चतुर्दशी की रात्रि को चौराहे पर देवतो को बलि देतीं और पीपल, वट आदि वृक्षों की फेरी करतीं और सोलह प्रकार से षष्ठी देवी की पूजा करतीं । वरन जो जैसा अनुष्ठान कहता, चाहे उसमें कैसा भी क्लेश हो, पुत्र की लालसा से उसके साधन से मुँह न फेरती थीं । ज्योतिषी अथवा और कोई गुणी को देख उससे सविनय सन्तानोत्पत्ति के विषय में विचार करातीं और रात्रि में जो स्वप्न देखतीं प्रातःकाल सोहागिन और पुत्रवती स्त्रियों से उसका फलाफल पूछती थीं ।

कुछ दिन के अनन्तर एक दिन राजा ने स्वप्न में देखा कि विलासवती अटारी पर सोई है और उनके मुखमण्डल में चन्द्रमा प्रवेश करता है । राजा ने शय्या से उठ शुकनास को बुला कर उससे स्वप्न का वृत्तान्त कहा । शुकनास सुन कर बड़े प्रसन्न हुए और बोले—महाराज ! ऐसा जान पड़ता है कि बहुत दिन के अनन्तर हमारा मनोरथ सिद्ध हुआ । शीघ्र आप पुत्र का मुखचन्द्र देख कर आह्लादित होंगे । इसमें कुछ मन्देह नहीं । मैंने भी आज रात्रि को स्वप्न में सुन्दर ब्राह्मण की एक गम्भीर मूर्ति को मनोरमा के ऊपर एक प्रफुल्ल कमल फेंकते देखा है । शास्त्रकार लोग कहते हैं कि शुभ कार्य के पूर्व शुभ लक्षण दीख पड़ते हैं । यदि हम लोगों की चिरमनःकामना सिद्ध हो तो इससे बढ़ कर आमोद का विषय क्या होगा । कहते हैं कि निशावसान में जो स्वप्न दीख पड़ता है वह बहुधा सत्य होता है । निःसन्देह महारानी को थोड़े दिनों में पुत्र उत्पन्न होगा । राजा मन्त्री के स्वप्न-वृत्तान्त को सुन कर अत्यन्त मुदित हुए और उनका हाथ

पकड़ कर रनिवास मे जाकर उन्होंने रानी को आनन्दित किया ।

कुछ दिन के अनन्तर विलासवती गर्भवती हुई । चन्द्रमा के प्रतिबिम्ब पड़ने से जैसे सरोवर शोभा पाता है, पारिजात के फूलने से जैसे नन्दनवन सुशोभित होता है, विलासवती भी गर्भधारण करके उसी प्रकार श्रीमती हुई । प्रति दिन गर्भ बढ़ने लगा । जल भरे मेघ की भाँति विलासवती की गति मन्द हुई; मुख में जल उठने लगा; शरीर शिथिल और पीतवर्ण हो गया । इन सब लक्षणों को देख कर प्रजा नं स्वभावतः जान लिया कि रानी गर्भवती हैं ।

एक दिन सन्ध्या समय राजा और मन्त्री राजभवन में बैठे थे कि कुलवर्द्धना नाम राजचेरी ने आकर राजा के कान में रानी के गर्भसञ्चार का संवाद कहा । राजा इस मङ्गल-समाचार को सुन कर बड़े आनन्दित हुए, रोमाञ्च खड़े हो गये और वदन प्रफुल्लित हुआ । शुकनास ने राजा और कुलवर्द्धना की वह दशा देख कर अनुमान किया कि राजा का मनोरथ सिद्ध हुआ । तथापि शङ्का-निवारणार्थ उन्होंने पूछा कि महाराज, स्वप्न क्या सत्य हुआ ? राजा ने हँस कर कहा कि यदि कुलवर्द्धना की बात मिथ्या न हो तो निस्सन्देह स्वप्न पूरा हुआ । चलो हम लोग आप चल कर दृढ़ कर आवें । यह कह कर अङ्ग से एक बहुमूल्य आभरण उतार उन्होंने कुलवर्द्धना को शुभ समाचार का पारितोषिक देकर बिदा किया और वे आप भी रनिवास में चले । मार्ग में दहिना नेत्र फड़कने लगा । वहाँ जाकर उन्होंने देखा तो रानी एक परम कोमल

शय्या पर पौढ़ी थीं। सिरहाने एक मङ्गल-कलश रक्खा था। चारों ओर मणिमय दीप जल रहे थे। घर में श्वेत सरसों फैली थी। रानी राजा को देख कर शय्या से उठने लगीं तब राजा ने निषेध किया और कहा कि हे प्रिया, कुंश का कुछ प्रयोजन नहीं है। तुम्हारी चेष्टा में ही हमारा आदर होता है। यह कह कर वे शय्या के एक कोने में बैठ गये। शुकनास भी एक स्थान पर बैठे। राजा ने तो रानी की चेष्टा ही देख कर गर्भ का लक्षण जान लिया।

धीरे धीरे गर्भ बढ़ने लगा और रानी को अनेक प्रकार की सुखादुःख वस्तु खाने की इच्छा होने लगी। जो जो वस्तु रानी माँगती राजा तुरन्त प्रस्तुत करते थे। कुछ काल के अनन्तर शुभ दिन और शुभ लग्न में रानी को एक पुत्र उत्पन्न हुआ। यह समाद सुन कर परिजन बड़े आह्लादित हुए। राजा के घर में बड़ा उत्सव होने लगा। घर घर नृत्य और राग-रङ्ग होने लगा। राजा पुलकितचित्त होकर दीन-दुखियों को धन लुटाने लगे। जिसने जो माँगा उसको वही दिया। बन्धियों को छोड़ दिया और दरिद्रियों का कोट्यधीश कर दिया।

ज्योतिषियों से अच्छा मुहूर्त पूछ कर राजा शुकनास के साथ पुत्र का मुँह देखने को चले तो देखते क्या हैं कि सूतिका-गृह के द्वार पर दोनों ओर जल भरे दो मङ्गल-कलश रक्खे हैं और खम्भों पर सुन्दर सुन्दर फूलों की माला लटक रही हैं। सब बूढ़ो स्त्रियाँ कोई तो षष्ठी देवी की पूजा करती हैं, कोई

पाड़श देवियों की मूर्ति बना रही हैं और ब्राह्मण लोग मन्त्र पढ़ पढ़ कर सौरी में जल छिड़क रहे हैं । पुरोहित लोग नारायणसहस्रनाम का पाठ करके मङ्गल अनुष्ठान कर रहे हैं । राजा आग पानी छूकर हाथ पाँव धोकर गृह के भीतर गये और उन्होंने देखा कि बालक रानी की गोद में सोया हुआ घर को दोमिमान् कर रहा है । उसके वदन की प्रभा मार्त्तण्ड की प्रभा से प्रचण्ड थी । सौन्दर्य और लावण्य की यह दशा थी कि मानो साक्षात् षडानन बालक रूप धारण करके रानी के उदर में जन्मे हैं । राजा पुत्रमुख को वारम्बार देखते थे पर तृप्ति नहीं होती थी । जितना ही देखते थे उतनी ही नव अभिलाषा उत्पन्न होती थी । शुकनास ने राजकुमार के अङ्ग प्रत्यङ्ग को भली भाँति देख कर कहा—“महाराज ! देखिए राजकुमार के अङ्ग में सब चक्रवर्ती राजा के लक्षण देख पड़ते हैं । महापुरुषों के हाथ में शङ्ख चक्र, चरण में पताका, ऊँचा ललाट, बड़ बड़े नेत्र, ऊँची नाक और लाल अधर होते हैं । ये सब चिह्न राजकुमार के शरीर में दिखाई देते हैं ।”

मन्त्री इस प्रकार राजकुमार के रूप का वर्णन कर रहे थे, उसी समय मङ्गलक आया और राजा को नमस्कार कर कहने लगा—महाराज ! मनोरमा को एक पुत्र उत्पन्न हुआ है । राजा इस शुभ संवाद को सुन कर परम आह्लादित हुए और कहने लगे कि आज का दिन कैसा अच्छा है । कैसे कैसे शुभ समाचार सुनने में आते हैं । निस्सन्देह लोगों का कहना बहुत सच है कि विपत् विपत् का और सम्पत् सम्पत् का अनुसन्धान

करती है । यह कह कर हँसते हँसते उस पुरुष को उचित पारितोषिक देकर उन्होंने बिदा किया । इसके अनन्तर गवैयाँ और नाचनेवालों को लेकर शुक्नास के घर जाकर वे आनन्द करने लगे । दसवें दिन राजा ने शुभ लग्न देखवा कर कोटियों गऊ और कञ्चन द्रव्य दान दुखियों को देकर पुत्र का नामकरण करवाया । स्वप्न में देखा था कि रानी के मुख में पूर्ण चन्द्र प्रवेश करता है इसलिए उन्होंने पुत्र का नाम चन्द्रापीड़ रक्खा । मन्त्री ने भी ब्राह्मणेचित जातिकर्म इत्यादि करके अपने पुत्र का नाम वैशम्पायन रक्खा । क्रमशः मुण्डन आदि सब संस्कार समाप्त हुए ।

कुमारों का बालकपन खेत्तने ही में न जाय इसलिए राजा ने नगर के एक प्रान्त में सिमा नदी के तट पर बड़ी ऊँची दीवारों से घिरा हुआ अश्वशाला और व्यायामशाला-संयुक्त एक सुन्दर विद्यामन्दिर बनवाया जिसमें सब शास्त्र के बड़े बड़े पण्डित रख कर एक शुभ दिन में दोनों कुमारों को उनके अधीन कर दिया । वे रानी सहित आप भी एक बेर नित्य जाकर बालकों को देख आते थे । राजकुमार की विलक्षण बुद्धि देख अन्यायक लोग चमत्कृत और उत्साहित होकर बड़े प्रेम से विद्यादान देने लगे । उन्होंने भी समुचित ध्यान-प्रदानपूर्वक थोड़े ही दिनों में सम्पूर्ण विद्या सीख ली । शब्दशास्त्र, राजनीति, व्यायामकौशल, अस्त्र और सङ्गोत-विद्या, सर्वदेश-भाषा और काव्य, नाटक, इतिहास आदि विद्या उन्हें कण्ठस्थ हो गईं । व्यायाम के प्रभाव से शरीर ऐसा बलिष्ठ हो गया था कि जिसका हाथ पकड़ लेते छुड़ाना कठिन हो जाता, वरन् वे ऐसे बलवान् और

शक्तिसम्पन्न थे कि जिस मुगदर को दस योधा पृथ्वी से उठा नहीं सकते थे उसे वे सामान्यरूप से फेरते थे ।

व्यायामविद्या को छोड़ कर और सब विद्याओं में वैशम्पा-यन राजकुमार के समान थे । बचपन से एकत्र रहने के कारण दोनों में परस्पर निष्कपट मित्रता और सत्य प्रीति हो गई थी । एक दूसरे के व्यतिरिक्त क्षणमात्र भी नहीं रह सकता था । इस प्रकार पाठशाला में विद्याभ्यास करते करते दोनों युवा हुए । चन्द्रमा के उदय से सन्ध्या जैसे शोभा पाती है, आकाश में इन्द्रधनुष के उगने से वर्षाकाल जैसे सुशोभित होता है, पुष्पमय होने से कल्पलता जैसे श्रीमती होती है राजकुमार भी युवावस्था के समागम से उसी प्रकार परम सौन्दर्य को प्राप्त हुए । बक्षःस्थल विशाल, उरुयुगल मांसल, कटि क्षीण, बाहु प्रलम्ब, स्कन्ध स्थूल और वाणी गम्भीर हुई ।

जब वे भली भाँति विद्या सीख चुके तब आचार्यों ने घर जाने की अनुमति दी । राजा ने शुभ दिन देख कर बहुतेरे घोड़े, हाथी, रथ और पदचर के साथ बलाहक नाम सेनापति को विद्यालय में भेजा । राजकुमार को देखने के लिए और अनेक राजा भी बलाहक के साथ गये । सेनापति भीतर जाकर राजकुमार को प्रणाम कर हाथ जोड़ कर बोला—“युवराज ! महाराजा की आज्ञा है कि ‘अब हमारा अभिष्ट सिद्ध हुआ । तुम सम्पूर्ण विद्या सीख चुके । अध्यापकों ने घर जाने की आज्ञा दे दी है । प्रजा और परिजन लोग तुम्हारे दर्शन की बड़ी अभिलाषा रखते

हैं। अतएव हमारी इच्छा है कि तुम आकर उन लोगों को दर्शन दे। ब्राह्मणों का सत्कार, मानी लोगों का मान, प्रजारूपी पुत्रों का पालन और बान्धववर्ग को सुखी करो'। आपके चढ़ने के लिए महाराज ने पारस्य देश के अधिपति का भेजा हुआ समुद्र से प्राप्त वायु और गरुड़ के समान गामी उच्चैःश्रवा के सम्पूर्ण लक्षणों से लक्षित और त्रिभुवन का रत्नस्वरूप इन्द्रायुध नाम घोड़ा भेजा है। वह द्वार पर बँधा है। यदि आज्ञा हो तो ले आऊँ। अनेक राजा लोग भी आपके दर्शन को बाहर खड़े हैं"।

बलाहक की यह बात सुन कर राजकुमार ने इन्द्रायुध को लाने की आज्ञा दी। तुरन्त एक हृष्टपुष्ट, तेजस्वी और महावेगशाली घोटक सामने आया। उसका बल ऐसा था कि यद्यपि मनुष्य दोनों ओर से उसकी बल्लों पकड़े थे परन्तु जिस समय वह बिगड़ता था उसका मुँह नीचे नहीं कर सकते थे और वह ऊँचा इतना था कि सब से लम्बे मनुष्य का हाथ उसकी पीठ तक नहीं पहुँच सकता था। चन्द्रापीड़ ने इस अनुपम अश्व को देख कर बड़ा आश्चर्य माना और वे मन में चिन्ता करने लगे कि देवताओं और राक्षसों ने समुद्र-मथन करके क्या रत्न पाया? यदि पुरन्दर इस घोड़े पर न चढ़े तो उनका त्रैलोक्यराज्य निष्फल है। समुद्र ने उनको एक सामान्य उच्चैःश्रवा देकर टरका दिया। यदि गदाधर एक बेर इसको देख पावें तो फिर उनको गरुड़ पर चढ़ने का अभिमान न रहे। पिता हमारे कैसे प्रतापी हैं। त्रिभुवनदुर्लभ रत्न भी उन्होंने एकत्र किया है। इसका रूप और लक्षण देखने से ज्ञात होता है

कि यह अद्वितीय तुरङ्ग है। ऐसा जान पड़ता है कि किसी महात्मा के शापवश इसने अश्व का रूप धारण किया है।

इस प्रकार अनेक चिन्ता कर वे आसन से उठे और घोड़े के निकट जाकर मन में नमस्कार कर तथा चढ़ने के अपराध का क्षमा माँग कर उसकी पोठ पर आरोहण करके विद्यालय से बाहर हुए। वहाँ जो राजा लोग खड़े थे कुमार के मुखचन्द्र के अवलोकन मात्र से कृतार्थ हुए और साक्षात् करने की लालसा से सब धीरे धीरे निकट आये। बलाहक ने एक एक का नाम ग्राम बतला कर परिचय कराया और राजपुत्र ने उनका मधुर सम्भाषणपूर्वक सम्मान किया और अनेक प्रकार के वार्तालाप करते हुए वे नगर की ओर चले। बन्दो और भाट उत्तम रूप से कीर्त्तिगान करते थे। चाकर लोग कोई चमर झलता था और कोई छाता लगाय था। वैशम्पायन भी एक घोड़े पर चढ़े राजकुमार के पीछे पीछे चले।

चन्द्रापोड़ चलते चलते नगर के मध्यस्थित पथ पर पहुँचे। नागर लोग अपना अपना काम परित्याग करके उनका मुखकमल देखने लगे। नगर के सब द्वार खुले रहने से यह बोध होता था कि नगरी राजकुमार को कोटिनयन से अवलोकन करती है। कुमार के आने का संवाद सुन कर सब स्त्रियाँ गिरती पड़ती जो जैसे बैठी थीं उठ धाईं। खिड़कियों में कामिनियों का मुँह फूले हुए कमल के से दीख पड़ते थे। उनके चरण के महावर के लगने से पृथ्वी पल्लवमय हो गई। शरीर की शोभा से नगर श्रीमान्, भूषण की प्रभा से दस दिशायें इन्द्रधनुषमय,

मुख और लोचन की परस्परा से गगनमण्डल चन्द्रमय और मार्ग नील कमलमय दीख पड़ता था । राजकुमार की परम मोहिनी और सलोनी मूर्ति को देख कर अबलागण विमोहित हो गईं । वे परस्पर कहने लगीं कि हे सखी, वह खो धन्य और परम भाग्य-शालिनी है जिसे ऐसा सुकुमार और रूपवान् पति मिलेगा । ऐसा अनुपम पुरुष तो कहीं देखने में नहीं आया । जान पड़ता है ब्रह्मा ने चन्द्रमा का अंश निकाल कर इसी को बनाया है । जो हो, आज तो हम लोगों ने अनङ्ग को प्रत्यक्ष देखा । बाह्य वस्तु का प्रतिबिम्ब जैसे स्वच्छ जल और काँच पर पड़ता है, चन्द्रापीड़ की मोहिनी मूर्ति का प्रतिरूप उसी प्रकार कामिनियों के हृदय पर छा गया । यद्यपि राजकुमार क्षणमात्र में उनके नेत्रों से अदृश्य हो गये परन्तु वे हृदय के अचल अतिथि हो रहे । जब राजकुमार राजभवन के समीप पहुँचे तब पुर की कुल-वधुओं ने फूलों की वर्षा की भाँति उनके मस्तक पर अक्षत चन्दन की वर्षा की ।

कुमार क्रमशः द्वार पर पहुँचे और घोड़े से उतरे और बलाहक मार्ग दिखलाता हुआ आगे ले चला । वैशम्पायन भी कुँवर का हाथ पकड़े पीछे पीछे चले तो क्या देखते हैं कि सैकड़ों पहलवान अस्त्र शस्त्र बाँधे द्वार पर खड़े हैं । भीतर कहीं धनुष-बाण, कृपाण आदि आयुध-परिपूर्ण अस्त्रशाला; कहीं वाजी, गज, करभ, व्याघ्र-प्रभृति भयङ्कर पशुओं से भरी हुई पशुशाला; कहीं सुन्दर सुन्दर अश्वों की अश्वशाला, कहीं कुररी, कोकिल, राजहंस, चातक, शिखण्डी, शुक, सारिका आदि मनोहर पक्षियों की पक्षिशाला, कहीं वेणु, वीणा, मुरज,

सृदङ्ग आदि संयुक्त सङ्गीतशाला और कहीं विविध विचित्र चित्र-सम्पन्न चित्रशाला बनी हैं । कहीं परम रम्य आराम शोभित हैं और उनके मध्य में सरोवर के तट क्रोड़ापर्वत के ऊपर फुहारे छूट रहे हैं । बड़े बड़े आचार्य नीतिज्ञ धर्मशास्त्री लोग विचारा-लय में बैठे विचार कर रहे हैं । अतिथि लोग नाना प्रकार के रत्नों से विभूषित सभामण्डप में बैठे हैं । कहीं नर्तक नाच रहे हैं, गायक गान करते हैं और कहीं बन्दो और भाट यश बखान कर रहे हैं । जलचर जीव प्रमोदपूर्वक इधर उधर भ्रमण कर रहे हैं । बालक मोर और मोरनी से खेल रहे हैं और हरिण और हरिणी मनुष्य के देखने से भयाकुल होकर घर के चतुर्दिक् घूम रहे हैं ।

छः डेवढी पार कर सातवीं के भीतर प्रवेश कर वे महाराज की सभा के निकट पहुँचे । महल की स्त्रियाँ सब राजकुमार को देख कर मङ्गल गान करने लगीं । राजा उस समय एक शय्या पर पौढ़े थे और सेजपाल लोग अस्त्र बाँधे पहरा दे रहे थे । द्वारपाल ने कहा, महाराज देखिए ! राजा ने यह वाक्य सुन कर दृष्टि फेरी और वैशम्पायन संयुक्त चन्द्रापीड़ को देख कर वे बड़े आह्लादित हुए और हाथ बढ़ा कर पुत्र को अङ्ग में लगा कर उन्हेंने भली भाँति आलिङ्गन किया । वैशम्पायन को भी शरीर से लगा कर बैठने की आज्ञा दी । थोड़े समय के अनन्तर राजकुमार माता के सन्निकट गये । उन्होंने स्नेहमय प्रफुल्ल नयन से पुत्र को वारं-वार देख कर ललाट और मुख का चुम्बन करके अपनी गोदी में बैठाया और प्रेममय मधुर वचन से वे बोलीं—“बेटा, तुम को

अनेक-विद्यासम्पन्न देख कर हमारे नयन और मन दोनों तृप्त हुए । अब बधू के मुख देखने की लालसा मन में लगी है ।” यह कह कर लज्जा से अधोमुख पुत्र का बे गाल चुम्बन करने लगीं ।

राजपुत्र इस प्रकार सम्पूर्ण रनिवास को प्रमोदित कर अन्त में शुक्रनास के गृह पर गये । मन्त्री का घर भी इस भाँति सामग्रो-मय था कि राजभवन ही जान पड़ता था । अनेक राजा और बाबू लोग बैठे थे । उसी समय चन्द्रापीड़ और वैशम्पायन पहुँचे । शुक्रनास ने अपने पुत्र और राजकुमार को गाढ़ आलिङ्गन किया और वे परम सन्तुष्ट हुए । फिर राजपुत्र से बोले कि “हे पुत्र ! आज महाराज को तुम्हें सर्वविद्यासम्पन्न देख कर ऐसा प्रमोद हुआ है कि कोटियों राज के मिलने से न होगा । आज गुरुजनों का आशीर्वाद और राजा का सुकृत फला । आज कुल-देवता प्रसन्न हुए । प्रजागण कैसे धन्य और पुण्यवान् हैं जिन के प्रतिपालन के हेतु तुम ने अवतार लिया । वसुमती कैसी सौभाग्यवती है जिस ने पतिभाव से तुम्हारी आराधना की । भगवान् जैसे अनेक जन्म लेकर पृथ्वी का भार उठाते हैं तुम भी उसी प्रकार अभिषिक्त होकर प्रजा का प्रतिपालन करो” । राजकुमार मन्त्री की सभा में थोड़ी देर बैठ के मनोरमा के पास गये और उन्होंने भक्तिपूर्वक उसे नमस्कार किया । घर आकर स्नान, भोजन इत्यादि कर्म कर के राजा के आज्ञानुसार श्रीमण्डप नाम शयनागार में जाकर वे विश्राम करने लगे । इसी प्रासाद के निकट इन्द्रायुध के निमित्त भी एक स्थान नियत किया गया था । संध्या समय दिङ्मण्डल रक्तवर्ण हुआ और चक्रवाक के चारों ओर उत्पतित होने से जान

पड़ता था कि दिशा विरहवेदना-स्मृतिपथारूढ़ होने से हृदय फाड़ कर रक्त फेंक रही है। पूज्य लोग विपत्काल में भी नीच पद ग्रहण नहीं करते इसी हेतु सूर्य अस्त होने के समय भी पश्चिमाचल के सब से ऊँचे शिखर पर बैठे। सूर्यास्त और रात्रि के बीच के तापशून्य और अन्धकाररहित समय में लोग बड़े प्रसन्न हुए। मार्तण्डरूपी सिंह के विवरस्थ होने से अन्धकाररूपी छोटे जीवों ने देश को आक्रमण किया। नलिनी ने तमारि के विरह से भ्रमर रूप आँसू ढार कर अपने कमलरूपी नेत्र को बन्द कर लिया। पक्षियों का कलरव प्रारम्भ हुआ। इसके अनन्तर प्रज्वालित दीपशिखा और मणि की ज्योति से राजभवन के अप्रकाश का नाश हुआ। चन्द्रापीड़ ने माता-पिता के सङ्ग अनेक प्रकार वार्तालाप कर भोजन किया और वे अपने महल में जाकर एक कोमल शय्या पर सोये।

प्रातःकाल पिता की आज्ञा पा बड़े बड़े कुत्ते, शिञ्जित हाथी और अनेक अस्त्रधारी योधाओं को लेकर वन में आखेट करने को वे गये तो क्या देखते हैं कि सिंह राजाओं की भाँति गुहा में पड़ा है और भयङ्कर आकार हिंस्र, शार्दूल इच्छापूर्वक पशुओं पर आक्रमण कर रहे हैं। मृगगण सब भयाकुल अपने बच्चों समेत इधर उधर दौड़ रहे हैं, और हस्तिगण दल बाँधे फिर रहे हैं और भैसे अपने रक्तवर्ण नेत्रों से भय उत्पादन करते हुए निर्भय घूम रहे हैं। शूकर, रीछ और गैंडे आदि पशुओं का भयङ्कर आकार देख कर और घोर शब्द सुन कर पाँव काँपने लगता था। वृक्ष की सघनता के कारण सूर्य का प्रकाश देख नहीं पड़ता था।

राजकुमार ने ऐसे भयङ्कर जङ्गल में जाकर तीर और कमान द्वारा अनेक भालू, सारङ्ग, शूकर इत्यादि वनपशुओं को मार के गिरा दिया और कितनों को बिना मारे केवल कलाकौशल से पकड़ लिया । मृगया की विद्या में वे ऐसे निपुण थे कि उड़ते हुए पक्षिमूह को सहज ही बाणविद्ध करते थे ।

दोपहर हो गया । सूर्य मस्तक पर आगये । आतप के ताप और श्रम से शरीर स्वेदमय हो गया । उस पर कुसुमराग और शोणित के पड़ने से ऐसा जान पड़ता था जैसे राजकुमार के शरीर में अङ्गराग और रक्तचन्दन लगा है । इन्द्रायुध के भो मुख से फेन और शरीर से पसीना निकलने लगा । उसी अवस्था में नवपल्लव का छत्र धारण किये और साथ के राजा लोगों से बात करते करते वे घर आये । द्वार पर घोड़े से उतर मृगयावेष परित्याग कर उन्होंने थोड़ा विश्राम किया । फिर स्नान करके अङ्ग में अङ्गराग लेपन किया और षाटम्बर पहिन भोजन किया और अपने हाथ से खाद्य द्रव्य लाकर इन्द्रायुध को दिया । वह दिन तो इस प्रकार कटा ।

दूसरे दिन प्रातःकाल राजकुमार अपने प्रासाद में बैठे थे । उसी समय कैलाश नाम चेरी एक स्वर्णमय आभूषण पहिने सुन्दरी के साथ वहाँ आई और विनयपूर्वक निवेदन करके बोली कि रानी ने आज्ञा दी है कि आप इसको अपनी ताम्बूलवाहिनी कीजिए । यह कुलूत देश के राजा की पुत्री है । इसका नाम पत्रलेखा है । महाराजा इस देश को जय करके इसे बन्दी बना कर लाये हैं और उन्होंने इसे महल में रक्खा है । रानी इसको अपनी

कन्या की तरह लालन पालन करती थीं और बड़ी प्रसन्न रहती थीं । इसको सामान्य चेरी न जानिएगा । सखी और शिष्या के समान जानिएगा । इस राजकन्या का यथोचित आदर कीजिएगा । यह ऐसी गुणवती और सुशीला है कि आप अवश्य इसके वशी-भूत हो जाइएगा । अभो आप को इसके कुलशील के विषय में कुछ ज्ञान न था इसलिए मैंने परिचय करा दिया । राजकुमार उसके मुख से माता की आज्ञा सुन कर कुछ काल तक पत्रलेखा की ओर देखते रहे । उसका आकार मात्र देख कर उन्होंने जान लिया कि यह सामान्य कन्या नहीं है । फिर कैलाश को यह कह कर बिदा किया कि “मैंने रानी का आदेश ग्रहण किया” । पत्रलेखा ताम्बूलवाहिनी की अवस्था में राजकुमार के प्रतिबिम्ब की भाँति सङ्ग रहने लगी । कुमार भी उसको उसके गुणों के कारण दिन दिन अधिकतर प्यार करने लगे ।

कुछ दिन के अनन्तर राजा ने चन्द्रापीड़ को राज्याभिषेक करने की अभिलाषा की । यह संवाद भटपट नगर में फैल गया । घर घर आनन्द और उत्सव होने लगा । अभिषेक की सामग्री एकत्र करने के लिए लोग दिगिदगन्तर में भेजे गये ।

एक दिन कार्यक्रम से राजकुमार शुकनास के घर गये तो उन्होंने बुलाकर कहा कि “तुमने सब शास्त्र पढ़ा और सम्पूर्ण विद्या का अभ्यास किया और सम्पूर्ण कला सीखी अर्थात् संसार में जन्म लेकर जो जो काम सीखना उचित था सो तुमने सीखा और अब तुमको कुछ अज्ञात और उपदेष्टव्य नहीं है । अब तुम युवा हुए इससे महाराज ने तुमको अभिषिक्त करके धन-सम्पत्ति का

स्वामी बनाने की इच्छा की है । अब तुम यौवन, धन और प्रभुत्व तीनों के अधिकारी हुए, परन्तु यौवनकाल बड़ा विषम है । इस वन में पड़ कर लोग बनैले हो जाते हैं । युवा लोग काम, क्रोध, लोभ इत्यादि पशुधर्म को सुखमूल जानते हैं और यौवनप्रभाव से जो एक प्रकार का अन्धकार मन में छा जाता है उसके मोचनार्थ उपाय नहीं करते । इस अवस्था के आरम्भ में बड़ी निर्मल बुद्धि भी पावस की नदी की भाँति कलुषित होजाती है और विषय-रूपी वृष्णा सब इंद्रियों को दुःख देने लगती है । इस समय दुष्कर्म भा सुकर्म जान पड़ता है और दुराचरण में लज्जा नहीं होती । इस समय मद्यपान न भा करने से घनघोर यौवन के मद से लोग चूर रहते हैं और हिताहित और सदसद् का विचार नहीं करते । धन से गर्व उत्पन्न होता है । अहङ्कारी लोग मनुष्य को जीव नहीं समझते । उनका स्वभाव उस समय ऐसा हो जाता है कि अपने हित की बात के अतिरिक्त और बातों पर वे क्रोधित होते हैं । इस विष का कोई औषध नहीं है । अपने सुख में किसी के दुःख और सन्ताप की कुछ सम्भावना नहीं होती वरन लोग अकारण भी “दहिने बाँये” होने लगते हैं । यौवन, युवराज और ऐश्वर्य यह सब क्षणकालीन हैं । केवल बुद्धिमान लोग इस प्रबल तरङ्ग में बचते हैं । यदि बुद्धिरूपी नौका न हो तो यह प्रवाह बिना डुबाये न छोड़े और एक बेर डूबने से फिर कौन बच सकता है ?

यह कोई प्रमाण नहीं है कि जो सद्गुण में उत्पन्न होता है वह सत्स्वभाव और विनीत होता है । क्या अच्छी भूमि में काँटे का वृक्ष नहीं उत्पन्न होता ? क्या चन्दन की लकड़ी में जो अग्नि

निकलती है वह जलाती नहीं ? आप ऐसे बुद्धिमान् पुरुष को उपदेश देना उचित है । मूर्ख को उपदेश देना पत्थर पर अनाज बोलने के समान है । क्या सूर्य की किरण स्फटिकमणि की भाँति “मृतिगण्ड” में प्रतिफलित हो सकती है ? सदुपदेश परम अमूल्य रत्न है । यह शरीर को बिना कुरूप किये वृद्धत्व सम्पादन करता है । ऐश्वर्यवान् को उपदेश देनेवाले लोग बहुत कम हैं, परन्तु बिटकी बजाने और प्रतिध्वनि अर्थात् “जो आप कहते हैं वही ठीक है” कहनेवाले बहुत हैं । स्वामी का वाक्य चाहे सम्पूर्णरूप से असन् और अन्याययुक्त हो परन्तु उनके लिए वही ठीक है; क्योंकि उनको तो ठकुरसोहाती कहना है । यदि कोई साहसी पुरुष प्रभु के वाक्य का अन्याय और अयुक्त होना सिद्ध कर दे तथापि कोई उसको प्रमाण न समझेगा । प्रभु भी उस समय बधिर अथवा क्रोधान्ध होकर उस प्रतिवादी का अपमान करता है । अर्थ अनर्थ का मूल है । मिथ्या अभिमान, अक्रिञ्चन अहङ्कार और वृथा धृष्टता प्रायः अर्थ से उत्पन्न होते हैं ।

प्रथम लक्ष्मी की प्रकृति की विवेचना करके देखो । चाहे कितने ही कष्ट से इसको प्राप्त करो और कितने ही यत्न करो पर वह एक स्थान पर नहीं रह सकती । रूप, गुण, पाण्डित्य, कुल, शील किसी का विचार नहीं करती । रूपवान्, गुणवान्, विद्वान्, सद्गुणजात और सुशील को परित्याग करके अधमाधम पुरुष के गृह में जाकर वास करती है । जिसके घर में यह चंचला जाती है वह स्वार्थ और लोभवश होकर दुष्कर्म को सुकर्म, पशुधर्म को रसिकता, इष्टाचार को प्रभुत्व और मृगया

को व्यायाम समझता है । यदि मिथ्या स्तुति न करे तो कोई धनी के निकट सहवास के योग्य नहीं होता । जो परहितहानिकारी होते हैं और सदसद् आचार का विचार नहीं रखते, वरन् सर्वदा हाथ बाँधे धनेश्वर को जगदीश्वर के समान जानते हैं उन्हीं का तो वहाँ आवागमन रहता है और वही प्रशंसापात्र भी गिने जाते हैं । धनेश्वर भी स्तुतिवादक को यथार्थवादक जान कर उसी से वार्तालाप करता है, उसी को पण्डित और बुद्धिमान् जानता है और उसी की सम्मति से कार्य साधन करता है । परन्तु सत्यवादी और उपदेशकर्ता को निन्दक समझ कर निकट बैठने नहीं देता । तुमने दुरवगाह नीतिप्रयोग और दुस्तर राज्यशासन का बोझ अपने सिर पर लिया है इसलिए सावधान हो । ऐसा न हो कि कोई किसी प्रकार निन्दा करे । तुम भी ऊर्ध्वलिखित धनेश्वर की भांति न हो जाओ । राजा प्रायः अपने नेत्र से नहीं देखते परन्तु दुराचारी लोगों के वश होकर वे नाश को प्राप्त होते हैं । वे अपने हित के सम्मुख प्रभु का हित नहीं विचारते । बाहर से साधुभाव रख कर अपने दुष्ट अभिप्राय को छिपाये रखते हैं और समय पाकर नोन मिर्च लगी हुई बातों से प्रभु को भुलावा देकर सर्व नाश कर देते हैं । तुम स्वाभाविक धीर हो तथापि तुमको वारंवार उपदेश देता हूँ कि धन और यौवन के मद से उन्मत्त होकर दुराचरण में प्रवृत्त न होना । महाराज के इच्छानुसार अभिषिक्त होकर कुलमर्यादा-पूर्वक भूभार वहन करो, शत्रुरूपी अन्धकार को देश से दूर करो और सम्पूर्ण देश जय कर के अखण्ड भूमण्डल में आधिपत्य

स्थापित करके प्रजावर्ग का प्रतिपालन करो ।” इस भाँति उपदेश कर मन्त्री चुप हुए और चन्द्रापीड़ उसी की आवृत्ति करते करते घर गये ।

जब अभिषेक की सब सामग्री एकत्र हो गई राजा ने मन्त्री और पुरोहित के साथ शुभ दिन और लग्न देख कर तीर्थ, नदी और समुद्र से लाये हुए मंत्र-पूत जल से राजकुमार को स्नान कराया । लता जैसे शाखा द्वारा एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर जाती है उसी प्रकार राजसङ्क्रान्त भी राजलक्ष्मी द्वारा राजकुमार को मिला । पवित्र जल में स्नान करने से राजकुमार की शोभा द्विगुण हुई और उज्ज्वल वसन और मणिमय आभरण धारण करके और शरीर में अनेक प्रकार की सुगन्धमय वस्तु लगा और गले में एक सुन्दर माला पहिन वे सभामण्डल में जाकर सिंहासनरूपी मेरु पर सकलकलासम्पन्न शशधर की भाँति बैठे और नवीन नीतिप्रणाली द्वारा प्रजावर्ग का सुख, समृद्धि, वृद्धि और राज्य के सुनियम स्थापन करके सुख से यौवराज्य-भोग करने लगे । राजा भी राज्यभार पुत्र को अर्पण कर निश्चिन्त हो गये ।

कुछ दिनानन्तर युवराज ने दिग्विजय के हेतु कूच किया । दुंदुभि की ध्वनि मेघगर्जन के समान होने लगी । सेना का कोलाहल चारों ओर व्याप्त हुआ । राजकुमार नखशिख मणिमय भूषण से भूषित होकर हाथी पर चढ़े । पत्रलेखा भी उसी पर बैठी । वैशम्पायन एक दूसरे हस्तो पर चढ़ कर युवराज के साथ चले । क्षण भर में पृथ्वी तुरङ्गमय, दिग्मण्डल हस्तिमय, अन्तरिक्ष छत्रमय, वायु मदगन्धमय, पथ सैन्यमय और नगर जयशब्दमय हो

गया । सेना जब सुसज्जित होकर बहिर्गत हुई तब धरती काँपने लगी । दीप्तिमान् शस्त्रों पर सूर्य की किरण पड़ने से बिजली की चमक का ध्यान आता था । गज की गर्जन, घोड़े की हिनहिना-हट, दुन्दुभि का भयङ्कर शब्द और सेना का कोलाहल सुन कर प्रलयकाल का स्मरण होता था । पद्मराज से गगनमण्डल अन्धकारमय हो गया । आकाश और भूमि में कुछ भेद नहीं जान पड़ता था । ऐसा ज्ञात होता था कि पृथ्वी सेना का भार असह्य जान कर ऊपर भागी जाती है । कभी कभी ऐसा शब्द होता था कि कुछ सुनाई नहीं देता था ।

कुछ दूर जाकर सन्ध्या के पूर्व ही राजकुमार एक रमणीक स्थान पर उतरे और उस दिन वहीं ठहरे । सब लोग आहारादि कर के पटगृह में सोये । राजकुमार ने भी विश्राम किया । दूसरे दिन फिर सेना श्रेणी बाँधकर चली । मार्ग में वैशम्पायन ने राजकुमार से कहा कि ऐसा कोई देश नहीं है जिसे बड़े महाराज ने न जीता हो, ऐसा कोई दुर्ग नहीं है जिस पर उन्होंने आक्रमण न किया हो । हम लोग जिधर जाते हैं वह देश उनके राज्य के अन्तर्गत ही मिलता है । उनका विक्रम और ऐश्वर्य देख कर आश्चर्य होता है । उन्होंने सब देश जय किया और सम्पूर्ण राजाओं से अपना आधिपत्य स्वीकार कराया । उन्होंने सब रत्नों का सङ्ग्रह किया ।

राजकुमार अपनी परमबलशालिनी सेना की सहायता से पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण के सब अवशिष्ट देशों को जीत कर कैलाश पर्वत के निकटवर्ती हेमजट नाम किसतो की सुवर्ण-

पुर नामक नगरी में पहुँचे । उनको भी पराजय करके परिश्रान्त सेना का विश्राम करने का उन्होंने आदेश किया । आप भी वे वहीं सुख-भोग करने लगे ।

एक दिन वे वहाँ से आखेट करने को निकले तो उन्होंने वन में एक किन्नर और किन्नरी को भ्रमण करते देखा । उन्हें देख वे बड़े कौतुकाक्रान्त हुए और पकड़ने के लिए आगे बढ़े । घोड़ा वायु की भाँति दौड़ता था परन्तु वे भयाकुल होकर उससे द्विगुण द्रुत वेग से भागे । राजकुमार को प्रति क्षण यह बोध होता था कि अब पकड़ता हूँ, परन्तु वे भी प्राण त्याग कर दौड़ते थे । अन्त को वे एक पर्वत के ऊपर चढ़ गये । घोड़ा वहीं रुक रहा । राजकुमार की टकटकी बँध गई । परन्तु वे धीरे धीरे लोप हो गये ।

भ्रमाश होकर युवराज ने कहा—हा विधाता ! मैंने क्या दुष्कर्म किया था ? उनको कैसे पकड़ूँगा और पकड़ के फिर क्या करूँगा ? इसका कुछ मन में विचार न हुआ । ऐसा जान पड़ता है कि डेरे से बहुत दूर निकल आया हूँ । अब क्या करूँ, कैसे फिर वहाँ पहुँचूँ । इधर कभी आया नहीं । अब किधर चलूँ ! इस वन में मनुष्य का प्रतिबिम्ब भी नहीं देख पड़ता कि किसी से मार्ग पूछूँ । मैंने सुना है कि सुवर्णपुर के उत्तर निविड़ वन और उसके उस पार कैलाश पर्वत है । दक्षिण और चलने से डेरे पर पहुँचने की सम्भावना हो सकती है । अभी कितना कष्ट भोगना पड़ेगा कुछ कह नहीं सकता । कुकर्म तो मैंने किया, दोष किसको दूँ और उसका फल कौन भोगेगा । अब जो हो चलना चाहिए । यह स्थिर कर उन्होंने घोड़े को दक्षिण की

और फेरा । दोपहर हो गया था । सूर्यास्त से शरीर जला जाता था । पत्ती सब चुपचाप और वन निःशब्द हो गया था । घोड़े के शरीर से भी फेन बह रहा था । ऐसे समय में पिपासा अधिक लगती है और कण्ठ सूख जाता है । इस हेतु समीप में एक वृक्ष देख कर वे उसकी छाया के नीचे बैठे और घोड़े को वहीं बाँध कर और कुछ देर दूर्वासन पर विश्राम करके जलाशय की खोज में इधर उधर देखने लगे । एक स्थान पर हाथी के पैर का चिह्न और टूटे कुमुद, कल्हार और मृशाल देख कर उन्होंने अनुमान किया कि हस्तिगण इसी पन्थ से पानी पीने को जाते हैं । इस मार्ग से जाने में अवश्य पानी मिलेगा ।

यह सोच कर वे उसी पथ से चले । दोनों पार्श्वों में बड़े बड़े वृक्ष लगे थे । उनकी शाखा ऐसी फैली थीं जैसे कोई अङ्गुली द्वारा प्यासे पथिक को पानी पीने के लिए बुलाता हो । स्थान स्थान पर कुञ्ज और लता-मण्डप बने थे और बीच बीच में शिला पड़ी थी । इसी प्रकार मनोहर वन की शोभा देखते देखते राजकुमार कुछ दूर निकल गये और शीतल समीर के स्पर्श से पसीना सब सूख गया । शरीर शीतल हो गया । उस समय यह बोध होता था जैसे तुषार में घुसे चले जाते हैं । इतने में चारों ओर वृक्षों से परिवेष्टित, त्रैलोक्य-लक्ष्मी का मुकुट, वसुन्धरा देवी का स्फटिकगृह स्वरूप आच्छाद नामक सरोवर दृष्टिगोचर हुआ । जल उसका बड़ा निर्मल था । कमल, कुमुद, कल्हार आदि नाना प्रकार के फूल उसमें फूल रहे थे । उन पर मधुपभुण्ड भ्रमण कर रहे थे । हंसगण चारों ओर घूम रहे थे । सगन्धमय

पुरुषों का स्पर्श कर वायु सुगन्धमय चल रही थी । इस शोभा को देख कर राजकुमार ने कहा कि यद्यपि किन्नरों का अनुसरण निष्फल तो हुआ पर इस मनोहर मानस को देख कर चित्त बड़ा प्रसन्न हुआ । ऐसा रमणीय स्थान कभी देखा नहीं । जान पड़ता है कि भवानीपति महादेव इस सरोवर की शोभा से विमोहित होकर यहीं निवास करते हैं । सरोवर के दक्षिण तीर पर जाकर राजकुमार घोड़े से उतर पड़े । जब इन्द्रायुध की पीठ पर से पर्याय उतरा तब वह पृथ्वी पर लोटने लगा । इच्छा-पूर्वक स्नान और जलबान करके राजकुमार ने घोड़े के दोनों पिछले पैरों को बाँध कर दूब चरने को छोड़ दिया और स्वयं भी सरोवर में घुस कर मृणाल भक्षण किया और जल पीकर वे ऊपर आये । एक कुञ्ज में शिला पड़ी थी । उसी पर कमलपत्र बिछा कर दुपट्टा तान कर वे सो गये ।

कुछ देर विश्राम करने के अनन्तर वीणा और राग का शब्द सुन पड़ा । इन्द्रायुध भी शब्द सुन कर घास का खाना छोड़ कान उठा कर उसी ओर देखने लगा । राजकुमार को भी आश्चर्य हुआ कि इस निर्जन वन में सङ्गीत कहाँ होता है । वे उसी ओर देखने लगे । परन्तु कुछ दीखता न था, केवल अस्फुट मधुर स्वर की अमृतधारा कान में प्रवेश करती थी । आश्चर्ययुक्त हो, घोड़े पर चढ़, शब्द के अनुसार सरोवर के पश्चिम ओर वे चले । थोड़ा आगे बढ़ कर चारों ओर परम रमणीय उपवन के मध्य कैलाश पर्वत का एक भाग देख पड़ा, उसका नाम चन्द्रप्रभ था । उसके नीचे एक मन्दिर में चराचर-स्वामी भगवान् त्रिशूलधर

की एक मूर्ति थी, उसी मूर्ति के सामने पशुपतिव्रतधारिणी, ममता और अहङ्कार-रहित, निर्मलसरा, विलक्षणमूर्ति अट्टारह वर्ष की एक कन्या मधुर स्वर से बीणा बजा कर महादेवजी की स्तुति-गान करती थी । उसके शरीर की प्रभा से मन्दिर दीप्तिमान हो रहा था । कन्धे पर जटा लटक रही थी और तन में भस्म का लेप था । देखने से ज्ञात होता था कि पार्वती शिव के हेतु तपस्या कर रही हैं ।

राजकुमार ने घोड़े को एक वृत्त की शाखा में बाँध, जाकर त्रिपुरारि को भक्तिपूर्वक प्रणिवात किया और उस परी की ओर ध्यान करके कहा कि कैसा आश्चर्य है ! कैसे कैसे अद्भुत और चमत्कार के विषय स्वप्न के समान देख पड़ते हैं । मैंने आखेट और किन्नर के अनुसरण से कैसे कैसे भयङ्कर और परम रम्य प्रदेश देखे । अन्त में सङ्गीतध्वनि के अनुसार इस स्थान पर आकर एक अद्भुत बात देख रहा हूँ । कन्या के मनोहर आकार और मधुर स्वर से जान पड़ता है कि यह मनुष्य की स्त्री नहीं है; निस्सन्देह देवकन्या है । संसार में क्या अप्सरा की उत्पत्ति सम्भव है ? जो हो, यदि यह मेरे नेत्रों के सम्मुख से लोप न होजाय, पर्वत के शिखर पर अथवा गगनमण्डल में हठ से उड़ न जाय तो मैं अवश्य इसका नाम, धाम और तपस्या का कारण पूछूँगा । यह सङ्कल्प दृढ़ कर वे मन्दिर के एक कोने में बैठ कर गान-समापन के समय की प्रतीक्षा करने लगे ।

भजन समाप्त होने पर बीणा बंद हुई । कन्या ने उठ कर भक्तिभाव से महादेव की प्रदक्षिणा कर प्रणाम किया । इसके

अनन्तर पवित्र नेत्रपात द्वारा राजकुमार को परितृप्त करके आदर-पूर्वक स्वागत पूछा और विनीत वचन से कहा—महाशय ! आश्रम पर चलिए और मेरा आतिथ्य स्वीकार कीजिए । राजकुमार ने केवल उसके सम्भाषण ही से अपने को चरितार्थ जाना और वे शिष्य की भाँति उसके पीछे पीछे चले । वे मार्ग में चिन्ता करते जाते थे कि यह मुझे देख लोप नहीं हुई, वरन प्रोति प्रकाश करके अतिथिसत्कार ग्रहण करने के लिए आग्रह कर रही है । ऐसी आशा है कि पूछने से अपना वृत्तान्त भी कहेगी ।

कुछ दूर जाकर एक गिरि-गुहा दोख पड़ी जो तमाल की लता से ऐसी आच्छादित थी कि सूर्य की किरण भी उसमें प्रवेश नहीं कर सकती थी । दोनों ओर भरने में से जल भरभर गिर रहा था । गुहा के भीतर बल्कल, कमण्डल और भित्ता-कपाल देख कर उनके मन में स्वाभाविक शान्तिरस उत्पन्न हुआ । तपस्विनी उसके भीतर जा अर्घ्य की सामग्री एकत्र कर अर्घ्य-प्रदान करने लगी । उस समय राजकुमार ने कहा—“हे भगवती, तुम्हारे दर्शन मात्र से मैं पवित्र होगया और अर्घ्य भी हो चुका । इतने आदर का कुछ प्रयोजन नहीं । आप बैठें । परन्तु उस कन्या ने न माना । तब राजकुमार ने यथाविहित अर्घ्य ग्रहण किया और दोनों जन दो शिलाओं पर बैठे । तपस्विनी ने राजकुमार का परिचय पूछा और उन्होंने अपना नाम, धाम और दिग्विजय आदि की सविस्तर कथा कह सुनाई ।

इसके अनन्तर कन्या भित्ताकपाल लेकर आश्रमस्थित वृक्षों के नीचे घूमने लगी । उनसे टपक टपक कर सुखादु फलों से

वह तूँबा भर गया । उन्होंने फलों को उसने चन्द्रापीड़ के सम्मुख खाने को रक्खा । कुमार ने फल ले तो लिये, पर यह आश्चर्यघटना देख कर उनको बड़ा विस्मय हुआ । वे मन में चिन्ता करने लगे कि अचेतन जन्तु भी चेतन की भाँति कामना सफल करते हैं । तपस्या का प्रभाव ही ऐसा है । फिर तपस्विनी के इच्छानुसार फल भक्षण कर और पानी पी वे तृप्त हुए । कन्या ने भी आहार किया । सन्ध्या होने पर विधिवत् सन्ध्या-जाप करके एक शिला पर बैठ के दोनों विश्राम करने लगे ।

राजकुमार ने अवसर देख कर निवेदन किया कि हे देवी, मनुष्य की प्रकृति बड़ी चञ्चल है । स्वामी को किञ्चित् मात्र भी अनुकूल देख कर अनुचर अधीर और गर्वित हो जाता है । आपको प्रसन्न देख मेरा मन उत्साहमय होकर कुछ पूछना चाहता है । यदि आपको दुःख न हो तो अपना जन्मवृत्तान्त वर्णन करके मेरे चित्त को उद्वेगरहित कीजिए । देवकुल, राजकुल, गन्धर्वकुल अथवा अप्सराकुल आप किस कुल की भूषण हो ? किस कारण अपने कोमल शरीर को इस नवीन अवस्था में ऐसी कठिन तपस्या में नष्ट कर रही हो ? किस कारण उत्तमोत्तम प्रासाद को छोड़ ऐसे निर्जन वन में अकेली निवास करती हो ? कन्या इन प्रश्नों को सुन कुछ काल पर्यन्त निस्तब्ध रही । फिर ठण्डी साँस लेकर रोदन करने लगी । चन्द्रापीड़ उसको इस अवस्था में देख चिन्ता करने लगे कि क्या शोक और ताप ने सबको अपना आश्रय कर रक्खा है ? जो हो, इसके रोने से मेरे चित्त में और भी कौतुक उत्पन्न हुआ । जान पड़ता है कि इसको कोई बड़ा दुःख पड़ा है

क्योंकि क्लेश से ऐसी शान्त और पवित्रमूर्ति किसी प्रकार शोक-युक्त नहीं हो सकती । जब कुमार ने अनेक प्रकार से सन्तोषवाक्य कह कर समझाया और मुख धोने के हेतु निर्भर से जल ला दिया तो कन्या ने मुँह धोकर कहा—“हे राजपुत्र, इस अभागिनी तपस्विनी का वैराग्य-वृत्तान्त सुन कर आप क्या कीजिएगा ? वह केवल शोकजनक और दुःखोद्घाटक है । यदि सुनने की बड़ी अभिलाषा हो तो सुनिए । आपने सुना होगा कि देवलोक में अप्सरा रहती हैं । उनके चौदह कुल हैं । भगवान् लक्ष्मीपति के मानस से एक कुल उत्पन्न हुआ है और देव, अग्नि, जल, पृथ्वी, पवन, अमृत, सूर्यकिरण, चन्द्रकिरण, सौदामिनी, मृत्यु और मकरध्वज इन ग्यारहों से ग्यारह कुल उत्पन्न हुए । दक्ष राजा की कन्या, मुनि और अरिष्टा के सङ्ग गन्धर्वों का समागम होने से दो और कुल हुए । मुनि के गर्भ से चित्ररथ जनमे और इन्द्र ने उनको अपने सुहृदों में परिगणित करके प्रभाव और कीर्ति बढ़ा कर उन्हें गन्धर्वलोक का राजा कर दिया । भरतखण्ड के उत्तर किंपुरुष वर्ष में हेमकूट नाम हिमपर्वत पर वह निवास करता है । वहाँ उसके अधोन कई सहस्र गन्धर्व हैं । उन्हीं में चैत्ररथ नाम यह वन और आच्छोद नाम वह सरोवर निर्माण करके यह शिव की मूर्ति स्थापन की है । अरिष्टा के गर्भ से हंस नाम प्रसिद्ध गन्धर्व उत्पन्न हुआ और चित्ररथ ने अपने राज्य का एक अंश उसको देकर राजा बनाया । वह भी हेमकूट पर रहता है । गौरी नामक एक परम सुन्दर अप्सरा उसकी स्त्री है और यह अभागिन उन्हीं की पुत्री है । मेरा नाम महाश्वेता है । पिता को मेरे अतिरिक्त और

कोई सन्तान न थी । बाल्य अवस्था में मैं एक की गोदी से दूसरे की गोदी में जाकर अपने मधुर वचन से माता-पिता को प्रसन्न करती थी । वसन्त ऋतु में जैसे नव पल्लव और नव पल्लवों में कुसुम उदय होता है उसी प्रकार मेरे शरीर में यौवन का सञ्चार होने लगा ।

एक समय जब कि ऋतुराज के समागम से कमलवन विकसित हुआ, आम में बैर लगने लगे, कोकिल शीतल वायु के प्रवाह से वृक्ष पर बैठी कुहू कुहू शब्द कर रही थी, और नाना प्रकार के फूलों पर भ्रमर झनकार कर रहे थे, मैं माता के साथ आच्छोद सरोवर में स्नान करने को गई और तीर पर के सुन्दर सुन्दर वृक्ष और कुञ्जों में भ्रमण कर रही थी कि उस समय वायु-प्रेरित एक सुरभि परिमल घ्राणगोचर हुआ । उस गन्ध से मत्त होकर उसका अनुसरण कर धीरे धीरे आगे बढ़ी तो क्या देखती हूँ कि एक महातेजस्वी, परमसुन्दर, सुकुमार, मुनिकुमार सरोवर पर स्नान करने को चले आते हैं और सङ्ग में एक शिष्य भी है । मानो अनङ्ग अपने सङ्ग वसन्त को लिए तपस्वीवेष क्रोधान्ध शिव को प्रसन्न करने जाता है । पहले मुनिकुमार के कान में एक कुसुम-मञ्जरी थी । ऐसी मञ्जरी आज तक किसी ने देखी नहीं । उसकी सुगन्धि से मैंने जाना कि इसी से वन आमोदित हो रहा है । फिर एकटक मुनिकुमार की ओर देख कर मैं विस्मित हुई और मन में यह सोचने लगी कि ब्रह्मा ने इसके मुखचन्द्र की रचना के पूर्व कमल और चन्द्रमा को बना कर अभ्यास किया था और जङ्गाओं

और दोनों बाहुओं की बेर पहले कदली खम्भ और मृणाल पर हाथ माँजा था, नहीं तो एक प्रकार की कई वस्तु बनाने का क्या प्रयोजन था ? अर्थात् मुनिकुमार के मुखारविन्द को जब जब देखती थी तब तब नव अभिलाषा उत्पन्न होती थी । इस प्रकार देखते देखते मैं विह्वल हो गई । न जाने उनके रूपसम्पत्ति ने, यौवन काल ने, वसन्त ऋतु ने, उस स्थल ने वा अनुराग ने मुझे उन्मत्त कर दिया । मैं वारंवार मुनिकुमार को निमेषशून्य लोचन से देखने लगी और मुझे ऐसा बोध होने लगा जैसे कोई डारी से बाँध कर मेरे हृदय को आकर्षण कर रहा है । मेरा उनकी ओर पल पल अनुराग बढ़ने लगा । पर अन्त में मैंने यह विचार किया कि कहीं ऐसा न हो कि ये पीछे क्रोधान्ध होकर शाप दे दें । मैंने वहाँ से प्रस्थान करना उचित समझा । मैंने सुना है कि ऋषि लोग बड़े क्रोधी होते हैं । सामान्य अपराध से भी कुपित होकर वे शाप दे देते हैं । अतएव अब यहाँ ठहरना उचित नहीं । यह स्थिर कर मैंने वहाँ से प्रस्थान करने की अभिलाषा की और मुनिकुमार को प्रणाम किया । मेरे प्रणाम करने पर मदनासक्त मुनिकुमार भी मोहित हुए और अचञ्चलता, स्वेद, रोमाञ्च, और कम्प इत्यादि सात्विक भाव के लक्षण उनके शरीर में स्पष्ट दिखाई देने लगे । उनके हृदय का भाव जान कर मैंने द्वितीय ऋषिकुमार के निकट जाकर प्रणाम किया और पूछा कि महाराज इनका नाम क्या है और ये किस मुनि के पुत्र हैं ? इनके कान में जो कली है वह क्या किसी वृक्ष की सम्पत्ति है ? आहा ! उसकी कैसी सुन्दर सुगन्धि है । मैंने आज तक ऐसा प्रसून कभी नहीं सूँघा । मेरी बात सुन कर वे

मुसकुरा कर बोले कि तू यह पूछ कर क्या करेगी ? यदि बड़ी अभिलाषा है तो सुन ।

श्वेतकेतु नाम एक महाप्रतापी ऋषि दिव्यलोक में वास करते हैं । उनका रूप जगद्विख्यात है । एक समय वे भगवान् की पूजा के हेतु कमल का फूल लेने को मन्दाकिनी नदी के तीर पर उतरे । लक्ष्मी उनको देख कर मोहित हुई । उनके परस्पर समागम से एक पुत्र उत्पन्न हुआ । उस पुत्र को लेकर लक्ष्मी उनके सम्मुख आई और यह कह कर कि “महाराज, यह आपका पुत्र है” उसको उन्हें समर्पण करने लगी । महर्षि ने पुत्र का सम्पूर्ण संस्कार किया और उसके उद्भवस्थान के कारण उसका नाम पुण्डरीक रक्खा । ये वही पुण्डरीक हैं । समुद्र-मथन के समय एक पारिजात नाम वृक्ष निकला था । यह फूल उसा वृक्ष का है । यह इनके कान में जैसे आया वह भी सुनो । आज चतुर्दशी है । मैं और ये दोनों महादेव की सेवा के निमित्त नन्दनवन के समीपवर्ती मार्ग से कैलाश को जाते थे कि उक्त वन का माली यह फूल हाथ में लिये हमारे समीप आया और इनको प्रणाम करके कहने लगा कि हे महाराज, जैसा आपका रूप है वैसाही यह आभूषण है, अतएव इसे अपने कान में रख कर मुझे कृतार्थ कीजिए । ये उसकी बात पर कान न देकर आगे बढ़े तब मैंने उसके हाथ से फूल ले लिया और कहा कि “हे मित्र, इसमें दोष क्या है ? वनदेवता का निवेदन अवश्य स्वीकार करना चाहिए ” और फूल उनके कान में खोंस दिया । जब वे यह इतिहास कह रहे थे तब मुनिकुमार हँस कर बोले कि

हे बाला ! तू यह सब पूछ कर क्या करेगी ? यदि इस फूल के खंने की इच्छा हो तो ले । यह कह उन्होंने मेरे समीप आकर अपने कान से फूल निकाल मेरे कान में पहना दिया । मेरे गले में उनका कर-स्पर्श होने से उनका अन्तःकरण विह्वल हो गया । हाथ की रुद्राच-माला छूट पड़ी, परन्तु मैंने उसको पृथ्वी पर जाते जाते लोक कर अपने गले में पहन लिया । उसी समय छत्रधारिणी आई और मुझ से कहने लगी कि देवी स्नान करके तुम्हारी मार्गप्रतीक्षा करती हैं । शीघ्र चलो । हस्तिनी जैसे प्रथम अङ्कुश के आघात से कुपित होती है उसी प्रकार मैं उस दासी की बात सुन कर क्रोधयुक्त हुई और यह कहकर कि “माता बैठी हैं तो मैं क्या करूँ” अपने अनुरागाकृष्ट नेत्रों को उस प्राणप्रोतम के मुख-मण्डल से आकर्षण कर स्नान करने को चली ।

जब मैं कुछ दूर चली गई तब द्वितीय ऋषिकुमार ने अपने मित्र की यह दशा देख किञ्चित् क्रोध प्रकाश करके कहा कि “हे सखा पुण्डरीक ! तुम्हारी यह क्या दशा है ? तुम्हारा अन्तःकरण विकल क्यों हो गया है ? इन्द्रियविवश लोग कुपथ में पाँव देते हैं और मूर्खों की भाँति सदसद् का विचार नहीं करते और अपने चञ्चल चित्त को सँभाल नहीं सकते । क्या तुम भी उन्हीं के समान विवेकरहित और दुष्कर्मानुरक्त हो गये ? आज तुमको ऐसा इन्द्रियविकार क्यों हुआ ? तुम्हारी धीरता, गम्भीरता, विनय और जितेन्द्रियता कहाँ गई ? ब्रह्मचर्य, वैराग्य, गुरुपदेश, तपस्या, शास्त्रालोचन, यौवनशासन और मनदमन इत्यादि कर्म सब भूल गये ? आज तुम ऐसे बुद्धिहत क्यों हो गये ? धर्मशास्त्र

के अध्ययन से क्या यही ज्ञान हुआ है ? गुरुजनों के उपदेश से क्या यही फल हुआ है ? यदि तुम्हारे ऐसे मनुष्य को अनुराग ने विवश कर दिया तो अब विवेकशक्ति और नीतिशिक्षा निष्फल है। ज्ञानाभ्यास और सदुपदेश केवल भ्रम मात्र और जितेन्द्रियता कथामात्र है। तुम्हारी रुद्राक्षमाला कहाँ है ? वह हाथ से निकल गई और तुमको सुध नहीं। ऐसे तुम ज्ञानशून्य हो गये। वह दुष्ट स्त्री माला ले गई और मनहरण के उद्योग में लगी है। अब सावधान हो जाओ।” मुनिकुमार लज्जायुक्त होकर बोले कि “हे मित्र ! तुम मेरे विषयमें सन्देह क्यों करते हो ? मैं उस दुर्विनीत बाला का यह अपराध क्षमा न करूँगा। वे भृकुटि चढ़ा क्रोध कर मुझसे कहने लगे कि हे स्त्री, मेरी माला बिना दिये यहाँ से जाना मत। मैं उनके अनुराग में ऐसी मग्न थी कि अक्षमाला के भ्रम से अपना हार उतार कर, मैंने उनको दे दिया। वे भी ऐसे आसक्त थे कि वह हार उनको माला ही जान पड़ा। मैं सरोवर स्नान करने को गई और उनकी मोहनी मूर्ति हृदय में रख कर घर गई।

महल में जाकर जिधर आँख फाँती थी पुण्डरीक के मुखकमल के अतिरिक्त और कुछ देख नहीं पड़ता था। कुमार के वियोग से मेरी यही दशा थी कि मैं नहीं जानती कि जागती थी कि सोती, अकेली थी वा दुकेली, सुख में थी वा दुःख में, उत्कण्ठा ने आक्रान्त किया था वा व्याधि ने, यहाँ तक कि मुझे किसी बात का ज्ञान न रहा और मैं चैतन्यशून्य हो गई। समयानुकूल कर्तव्याकर्तव्य का कुछ विचार न करके मैंने चेरी से कहा कि कोई भीतर न आवे और मैं अटारी पर चढ़ गई और जहाँ मुनि-

कुमार से भेंट हुई थी उस प्रदेश को महारत्नाधिष्ठित, अमृत-रसाभिषिक्त और चन्द्रोदयालङ्कृत जान वारम्बार देखने लगी । देखते देखते ऐसी उन्मत्त हो गई कि उधर से जो वायु और पक्षी आते थे उनसे प्रियतम का समाचार पूछने लगी । मेरा अन्तःकरण ऐसा अनुरक्त हो गया था कि वे जो जो कर्म करते थे मैं वैसा ही करने लगी । वे तपस्वी थे यह समझ कर मुझे तपस्या से फिर द्वेष न रहा । वे मुनिवेष धारण किये थे इस से तापस वेष सं भी जघन्यता जाती रही । पारिजात-कुसुम उनके कान में था इससे वह भी मनोहर बोध होने लगा । सुरलोक उनका वासस्थान होने से रमणीय जनाई देने लगा । यहाँ तक कि नलिनी जैसे सूर्य की पक्षपातिनी, कुमुदिनी चन्द्रमा की पक्षपातिनी और मयूरी जलधर की पक्षपातिनी है उसी प्रकार मैं भी उनकी पक्षपातिनी हो एकटक उसी ओर देखने लगी । मेरी तरलिका नाम ताम्बूलवाहिनी भी बाहर गई थी । बहुकालानन्तर घर में आकर मुझ से कहने लगी कि हे राजपुत्री ! हम लोगों ने सरावर के तीर पर जिन ऋषिकुमारों को देखा था उनमें से एक, जिन्होंने तुम्हारे कान में कुसुममञ्जरी पहिनाई थी, छिप कर मेरे निकट आये और पूछने लगे कि हे स्त्री, जिनके कान में मैंने फूल खाँस दिया था वे कौन हैं ? उनका नाम क्या है ? वे किस की पुत्री हैं और कहाँ गई ? मैंने विनयपूर्वक कहा कि वह गन्धर्व-राज इंद्र की पुत्री हैं और उनका नाम महाश्वेता है । हेमकूट पर्वत जहाँ गन्धर्व लोग रहते हैं, वहाँ वे गई हैं । कुछ काल सोच कर वे फिर बोले कि तू लड़की तो है परन्तु तेरे स्वभाव से ज्ञात

होता है कि चञ्चल नहीं है । एक बात कहता हूँ सुन । मैंने हाथ जाड़ कर सादर निवेदन किया कि धन्य हैं मेरे भाग्य कि आप ने मुझे अपना विश्वासपात्र जाना । आप ऐसे महात्मा के दृष्टिपात ही से लोग अपने को कृतार्थ जानते हैं । आप विश्वास कर आज्ञा काजिए । मैं अत्यन्त चिरबाधित हूँगो । इसमें सन्देह नहीं । मेरी विनीत बातों को सुन कर उन्होंने मुझे अपनी उपकारिणी और प्राणदायिनी सखी के समान जाना और स्नेहभरी आँखों से देखकर प्रसन्नतापूर्वक एक निकटवर्ती तमाल के पत्ते को लेकर उसके रस से नख द्वारा अपने वल्कलवसन के एक खण्ड पर यह पत्रिका लिख कर मुझे दा और कहा कि इसे महाश्वेता का अकेले में दे देना जिसमें और कोई न जाने ।

मैंने अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक उस पत्र को तरलिका के हाथ से ले लिया । उसमें लिखा था कि हंस जैसे मुक्तमाला में मृणाल के भ्रम से ठग जाता है उसी प्रकार मेरा मन मुक्तमय हार से वञ्चित होकर तुम्हारे प्रति अनुरक्त हो रहा है । भ्रान्त पथिक का दिशाभ्रम, गूँगे का स्वाद, अनमिल सम्भाषण करनेवाले की बात, नास्तिकों का चार्वाक शास्त्र और उन्मत्त का सुगपान जैसा भयङ्कर होता है उसी प्रकार वह पत्रिका मुझे भयङ्कर बोध हुई । उसको पढ़ कर मैं उन्मत्त और विकलेन्द्रिय हो गई और बार बार पूछने लगी कि हे तरलिका ! तूने उन्हें कहाँ और किस भेष से देखा ? उन्होंने क्या कहा ? तू कितने समय तक वहाँ रही ? वे मेरे पीछे पीछे कितनी दूर तक आये थे ? परन्तु फिर यह सोच कर कि प्रियतम सम्बन्धी वार्ता बार बार कहनी सुन्नी

अच्छी नहीं होती, मैंने सब लोगों को वहाँ से विदा कर दिया और अकेली तरलिका से बात करते करते दिन बिता दिया ।

सन्ध्या समय दिवाकर के विरह से पूर्व दिशा भी मेरी भाँति मलिन हुई और मेरे हृदय के समान पश्चिमी दिशा का रङ्ग बढ़ने लगा । दो एक घड़ो दिन रह गया था कि छत्रधारिणी ने आकर कहा—राजकुमारी, हम लोगों ने स्नान-यात्रा के समय जिन मनुष्यों को देखा था उनमें से एक अक्षमाला लेने को आये हैं । वे द्वार पर खड़े हैं । मुनिकुमार का नाम सुनते ही मेरा चित्त व्याकुल हुआ और मैंने उन्हें तुरन्त बुलवा भेजा । जैसे रूप का सहाय यौवन और यौवन का मकरकेतु और उसका सहाय वसन्त-काल और वसन्त का सहाय सुरभि पवन है उसी भाँति वे पुण्डरीक के साथी थे । मैंने देखते ही पहचान लिया । उनका आकृति से जाना जाता था कि वे मुझसे कुछ कहने को आये हैं । मैंने उठ कर प्रणाम किया और आदरपूर्वक आसन पर बैठाया । कुछ बोलने की अभिलाषा कर उन्होंने तरलिका की ओर देखा जो मेरे निकट बैठी थी । मैंने उनका अभोष्ट समझ कर कहा कि आप इसको मेरे से भिन्न न जानिए जो आप को कहना हो प्रसन्नता-पूर्वक कहिए ।

उन्होंने कहा—हे राजपुत्री ! क्या कहें लज्जा की बात कही नहीं जाती । कन्दमूलफल-भोगो तपस्वी के मन में काम-सम्भार का सम्भव स्वप्न में भी नहीं होता । शान्त प्रभाव तापस के मन में ब्रह्मा ने कामोद्दीपन करके कैसी विलक्षणा प्रकाशित की है । कामदेव लोगों को अनायास ही उपहासपात्र कर देता है और

फिर उनमें भद्रता का लेश भी नहीं रहता । उस समय परम बुद्धिशाली मनुष्य भी उन्मत्त हो जाता है और उसे लज्जा, धीर, विनय, और गाम्भीर्य किसी का ध्यान नहीं रहता । भाई ने जिस मार्ग में पाँव रक्खा है न जाने वह वत्कल धारण के योग्य है, जटा धारण के समुचित है, तपस्या का कोई भाग है, धर्मानुष्ठान का कोई उपाय है अथवा स्वर्गलाभ का कोई आचार है ? कैसी आपत्ति है । कहे विन ! वनता नहीं, क्योंकि और कोई उपाय नहीं है । शास्त्रकार लोगों की सम्मति है कि मित्र के हित साधन से प्राणदान देना भी योग्य है, अतएव मैंने लज्जा को तिलाञ्जलि दे दी है ।

तुम्हारे सामने मैंने भाई को क्रोधप्रकाशपूर्वक तिरस्कार करके वहाँ से प्रस्थान किया परन्तु जब तुम वहाँ से चली आईं मैंने सोचा कि भाई वहाँ पर अकेला न जाने क्या करता होगा और मैं धीरे धीरे जाकर वृत्तों की ओट से देखने लगा पर भाई को न देख सका । उस समय मेरे मन में अनेक प्रकार की तर्कना हाने लगी और भय भी हुआ । क्या मेरा भाई कामदेव के बाण से मुग्ध होकर उसी कामिनी के पीछे चला गया ? अथवा उस सुन्दरी के चले जाने पर लाजित होकर कहीं छिपा है ? क्या अपनी मूर्खता समझ कर कहीं चला गया अथवा मुझे ढूँढ़ रहा है ? नहीं नहीं वह लज्जा के मारे सम्मुख नहीं आ सकता । चलो उसे ढूँढ़ लावें और क्रमशः कुञ्ज, लतामण्डप और सरोवर के तीर पर सब स्थानों में मैंने ढूँढ़ा परन्तु उनकी मूर्ति का कहीं दर्शन न मिला । उस समय मन में अनिष्ट शङ्का होने लगी ।

मैं इधर उधर ढूँढ़ रहा था तो क्या देखता हूँ कि सरोवर के तीर पर नाना प्रकार की लता से परिवेष्टित एक कुब्ज में पत्थर के ऊपर वाम कर पर वाम कपोल रखे भाई बैठे सोच रहे हैं । दोनों आँखें मुँदी हैं ! आँसू की धारा बही चली जाती है । साँस नीचे ऊपर हो रहा है और शरीर तेजहीन और पीतवर्ण हो गया है, मानो कोई चित्र रक्खा है । वे ज्ञानशून्य तो ऐसे होंगये थे कि भ्रमर कुसुमरंजु गन्ध के लोभ से बार बार आ कर कान पर बैठते थे और फूलों की धूरि शरीर पर गिरती थी परन्तु उनको कुछ ज्ञान न था । शरीर ऐसा सूख गया कि चोन्ह नहीं पड़ता था । उनकी यह दशा देख मैं बड़ा खेदित हुआ और सोचने लगा कि हा ! कामदेव का कैसा प्रभाव है ! जा उसके शर से विद्ध नहीं हुआ वही धन्य है और बड़ी सुख से संसार-यात्रा करता है । एक बेर जब पर उसने चोट की फिर उसमें ज्ञान का शेष नहीं रहता । कैसा आश्चर्य है ! क्षण मात्र में ऐसे ज्ञानराशि की यह दशा हुई ! इनकी प्रकृति बालक-पन से धीर और शान्त थी । सब लोग आदर्शस्वरूप जान कर इनके स्वभाव के अनुकरण की चेष्टा करते थे और गुण की कथा उल्लेख करके प्रशंसा करते थे । हा ! आज कैसे विवेक-शक्ति और तपःप्रभाव को पराभव करके, गाम्भीर्य को उन्मूलन और धैर्य को समूलच्छेद करके दग्ध मन्मथ ने ऐसे विलक्षण सत्स्वभाव-पम्पन्न महात्मा को सामान्य पुरुष की भाँति अभिभूत और उन्मत्त कर डाला है । शास्त्रकार लोग कहते हैं कि यौवनकाल को निर्दोष और निष्कलङ्ग व्यतीत करना अति कठिन है । इनकी

अवस्था देख कर उनकी बातों का प्रमाण भली भाँति मिलता है । इस प्रकार सोचते सोचते निकट जाकर और शिना के एक कोने पर बैठ कर मैंने पूछा कि हे मित्र, तुम्हारी यह क्या दशा है ? आज तुमको क्या हुआ है ?

कुछ काल के अनन्तर उन्होंने आँख खोली और ठण्ठो साँस लेकर वे बोले कि “हे मित्र, तुम तो सब जानते हो फिर क्यों अज्ञ की भाँति पूछते हो” और रोने लगे । इस लक्षण को देख कर मैंने जाना कि इस समय उपदेश सफल न होगा, तथापि मित्र को असन्मार्ग से निवृत्त करना सर्वतोभाव से उचित है । जो हो, कुछ उपदेश करना चाहिए । यह स्थिर कर मैंने उनसे कहा कि हाँ मुझको ज्ञात तो है, परन्तु मैं यह पूछता हूँ कि तुम जो इस दशा को पहुँचे हो क्या यह साधुसम्मत है वा धर्म-शास्त्र का मार्ग है ? क्या किसी तपस्या का अङ्ग है अथवा स्वर्ग अपवर्ग के लाभ करने का कोई उपाय है ? यह पथ तो अलग रहा, ऐसी कल्पना को भी मन में स्थान देना उचित नहीं है । केवल मूर्ख लोग कामासक्त होते हैं । केवल अज्ञानी लोग हिताहित का विचार नहीं करते । तुम भी क्या उन्हीं की भाँति असत्पथ ग्रहण कर साधुओं के निकट उपहासास्पद बनेगे ? साधुविगर्हित पथ अवलम्बन करने से क्या फल होगा ? जो लोग विषयभोग से सुखप्राप्ति की आशा रखते हैं वे कुवलयमाला समझ कर लवङ्ग-माला गले में पहनते हैं और महा उत्तम अङ्गार को अमूल्य रत्न समझ कर उठा लेते हैं । उनको हस्तिकादन्त मृणाल के समान और कालसर्प रज्जुसम दीख पड़ता है । आप

दिवाकर ज्योतिःस्वरूप हो कर खद्योत बनने की चेष्टा करते हो । सागर के समान गम्भीर होकर भी उन्माद और इन्द्रिय की प्रबलता की शान्ति नहीं कर सकते ? मेरी बात मानो क्षुब्धचित्त को स्थिर करो और धोरधारणपूर्वक चित्तविकार दूर करो ।

मैं इस प्रकार उपदेश कर रहा था कि उनकी दोनों आँखों से आँसू बहने लगे और मेरा हाथ पकड़ कर वे बोले कि हे मित्र ! और क्या कहें “जाके पाँव न फटी बेवाई, सो क्या जाने पीर पराई” तुमको कभी काम क्लेश तो हुआ नहीं इससे उपदेश देते हो । जिसको इन्द्रिय है, मन है वह देख सकता है और हिताहित का विचार कर सकता है और उसी को उपदेश देना भी उचित है । मुझमें उनमें से कोई वस्तु नहीं है । मेरे निकट तो धीरता, गम्भीरता और विवेचना ऐसा कोई शब्द ही नहीं है । यह उपदेश का समय नहीं है । जब तक मैं जीता हूँ तुम इस अचिकित्स्य व्याधि की ओषधि ढूँढो । मेरा अङ्ग जल रहा है और हृदय जीर्ण हो रहा है । इस समय जो उचित हो करो । यह कह कर वे चुप रह गये । जब मैंने देखा कि उपदेश फलदायक न हुआ और उनके हृदय में अनुराग ऐसे दृढ़ रूप से जमा है कि उसका उखाड़ना कठिन है तो सरस मृणाल, कमलदल और शैवाल लाकर मैंने उसी शिला पर बिछा दिया और उनको उस पर सुला कर मैं कदलीपत्र से वायु करने लगा । उस समय मैंने सोचा कि दुष्ट कन्दर्प को कोई कर्म असाध्य नहीं है । कहाँ वनवासी तापस और कहाँ विलासराशि गन्धर्व-कन्या ! दोनों का परस्पर अनुराग स्वप्न में भी असम्भव है । यह कौन विश्वास कर सकता था कि

सूखे वृक्ष में मञ्जरी लगेगी और माधवी लता उसको अवलम्बन कर के ऊपर उठेगी । जीव किस गिनती में है । जड़ वृक्ष और लता भी उसके अधीन हैं । देवता लोग भी उसके शासन को उल्लङ्घन नहीं कर सकते । कैसा आश्चर्य है ! हा ! उस दुष्ट ने ऐसे शान्तिसागर को क्षण में तृण के समान असार और अप-
दार्थ कर डाला । अब मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, किस प्रकार से भाई की प्राणरक्षा करूँ ? महाश्वेता व्यतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है । ये तो किसी प्रकार धीर धारण करके स्वतः बसके निकट जा नहीं सकते । शास्त्रकारों ने कहा है कि सुहृद् की प्राणरक्षा सर्वतोभाव से करनी उचित है, अतएव अति-
लज्जा-कर और प्रतिष्ठाहीन कर्म भी मेरे लिए कर्तव्य है । फिर अपने मन में मैंने कहा कि यदि इनसे कहूँ कि मैं तुम्हारे मनोरथ-
सिद्ध्यर्थ जाता हूँ तो सम्भव है कि वे लज्जा से निवारण करें । इस हेतु मैंने उनसे कुछ कहा नहीं । मैं छल से तुम्हारे पास आया हूँ । अब जो तुम उचित समझो करो । यह कह कर वे उत्तर की लालसा से मेरा मुँह देखने लगे ।

मैं उनकी बात सुन कर परम सुखसागर में निमग्न हुई । लज्जा और हर्ष दोनों अपना अपना भाव मेरे मुख पर प्रकाश करने लगे । मैंने अपने मन में कहा कि भाग्यवश कामदेव उन्हें भी मेरी भाँति दुःख देता है क्योंकि साधु लोग झूठ नहीं बोलते । कपिशल की बात सत्य है । इसमें कुछ सन्देह नहीं । इस समय मुझ को क्या करना और क्या कहना उचित है । मैं यह सोच रही थी कि प्रतिहारी ने आकर कहा—“राजकुमारी ! महागनी

ने सुना था कि तुम्हारा शरीर कुछ कुंशित है, अतएव देखने को आती हैं ।” कपिञ्जल यह सुनकर तुरन्त उठे और बोले कि हे राजपुत्री ! सूर्यास्त हो चला । अब मैं ठहर नहीं सकता । अब जा तुम उचित समझो करा । यह कह मेरी बात बिना सुने कपिञ्जल शीघ्र चले गये । उनके जाने पर मैं ऐसी चेतनशून्य हो गई कि माता ने आकर क्या कहा और क्या किया कुछ ध्यान न रहा । केवल इतना सुना कि वे बहुत काल तक मेरे निकट बैठी थीं ।

जब वे चली गईं तब मैंने ऊपर दृष्टे कर कर देखा तो सूर्य अस्त हो गया था और चारों ओर अँधेरा छा गया । मैंने तरलि का से कहा कि क्या तू देखती नहीं कि मेरी क्या दशा हो रही है ? इस समय क्या करना चाहिए सूझ नहीं पड़ता ? कपिञ्जल ने जो कहा सो तू ने सुना ? अब जो उचित हो सो कह । यदि इतर कन्याओं की भाँति धीर, विनय और कुलमर्यादा परित्याग करके सदाचार उल्लङ्घनपूर्वक अभिसारिकावृत्ति अवलंबन करूँ तो बड़ा अधर्म होता है । यदि कुलधर्म के अनुरोध से प्राण त्याग करूँ तो प्रथम परिचित कपिञ्जल के प्रणभङ्ग का पाप होता है और यदि आशाभङ्ग के कारण उस तपोधन युवा का कोई अनेष्ट हो तो ब्रह्महत्या होती है ।

यहो कहते कहते निशाकर का प्रकाश हुआ । बालचन्द्र की चन्द्रिका छिटकी । क्षपाकर की क्षपा और सुगन्धमय वायु के स्पर्श से मेरे हृदय में कामानल का संभव हुआ । चारों ओर अन्धकार के कारण दृष्टि नहीं जम सकती थी इस लिए कामशर

भा स्थिर था । परन्तु समय पाते ही उसका प्रथम आघात मेरे ऊपर हुआ । आँखें मुँद गईं, शरीर अवश होगया और मूर्च्छा ने घेर लिया । तरलिका मारे भय के शोकाक्रान्त होकर मेरे मुँह पर गुलाब जल इत्यादि शीतल द्रव्य छिड़क कर पट्टा करने लगी । कुछ कालानन्तर जब मुझको चेत हुआ मैंने देखा कि तरलिका बैठी रो रही है । मेरे आँख खोलते ही उसने जाना कि अभी प्राण हैं । वह कहने लगी, “हे बहिन अब लज्जा छोड़ दो और प्रसन्न-वदन होकर हमें भेजो तो हम तुम्हारे मनमोहन को ले आवें । नहीं, इच्छा हो चलो तुम्हीं को वहाँ ले चले । अब मुझसे यह तुम्हारा क्लेशकर दुःख देखा नहीं जाता ।” “हे तरलिके, अब यह सङ्कट सहा नहीं जाता । चलो जोते जी जीव बल्लभ से भेंट करें ।” यह कह कर तरलिका का सहारा लेकर मैं उठी ।

मैं अटारी से उतरने की चेष्टा कर रही थी कि मेरा दहिना नेत्र फड़कने लगा । दुर्घटना का भय तुरन्त हृदय में हुआ । मैंने कहा—हे परमेश्वर, अब क्या होनहार है । शुभ कर्म में अशुभ क्यों दीखता है । इतने में सुधाधर आकाशमण्डल के मध्य में पहुँचा और प्रकाशरूपी सुधा की वर्षा करने लगा और कौमुदी के समूह से पृथ्वी श्वेत वर्ण दीप की भाँति दीखने लगी । चारों ओर कोई फूलने लगी और रस के लालच से मधुकर उनके इधर उधर भूमने लगे और मन्द सुगन्धमय समीर भी बहने लगी । मोरगण मदमत्त होकर चारों ओर गान करने लगे और कोकिल भी बोलने लगी । मैं गले में रुद्राक्षमाला और कान में वही कुसुम की कली धारण किये तगकिला का हाथ पकड़े

अटारी से उतरी, परन्तु किसी ने मुझे देखा नहीं। मैं प्रमद वन की ओर का द्वार खोल प्रियतम से मिलने को चली ।

कुछ दूर जाकर मैंने तरलिका से कहा कि क्या चन्द्रमा जिस प्रकार से मुझे उनके निकट लिये जाता है उन्हें मेरे पास नहीं ला सकता ? उसने हँस कर प्रत्युत्तर दिया कि वे क्यों तुम्हारे ऊपर इतनी कृपा करने लगे । जिस तरह ऋषिकुमार तुम्हारे सौन्दर्य पर मरते हैं उसी भाँति चन्द्रमा भी तुम्हारा मुँह देख कर मोहित हो गया है और परछाहीं रूप तुम्हारे पीछे पीछे तुम्हें छूने को चला आता है और अपनी किरणों द्वारा तुम्हारे चरणचुम्बन की अभिलाषा रखता है । देखो मारे विरह के उसका शरीर भी पीला पड़ गया है । इसी प्रकार हँसी करते करते सरोवर के निकट पहुँच कर उसके स्फटिक जल से मैं अपना चरण धो रही थी कि मानस के पश्चिम तीर पर राने का शब्द सुन पड़ा परन्तु दूर होने के कारण कुछ स्पष्ट समझ में नहीं आता था । घर से चलते समय दहिने नेत्र के फड़कने से सन्देह तो हुआ ही था; इस समय राने का शब्द सुन कर जो डरा और शरीर काँपने लगा । जिधर से शब्द आता था मैं उसी ओर वेग से दौड़ी ।

रजनी के सन्नाटे में मुझको ये शब्द सुन पड़े—हा ! मैं मरा ! मेरा प्राण गया ! हाय ! यह क्या हुआ ! दुष्ट हत्यारे कामदेव ! तूने यह क्या कुकर्म किया ! आः ! हे पापिनि महाश्वेता ! इसने तेरी क्या हानि की थी ? हे दुराचारी चाण्डाल चन्द्र ! तेरा मनोरथ सिद्ध हुआ ! रे समीर, क्या अब तेरी छाती शीतल हुई ? हा भगवन् श्वेतकेतो ! अब तेरा पालन कौन करेगा ?

दे तप, अब तू आश्रयहीन हो गया ! सरस्वती, तेरा पति मर गया ! सत्य, तू अनाथ हुआ ! हा ! इतने दिन के अनन्तर सुरलोक सूना हो गया ! हे मित्र, किञ्चित् काल ठहरो । मैं भी तुम्हारा अनुगामी होता हूँ । इतने दिनों तक एक सङ्ग रहा अब सहायहीन और बान्धवहीन होकर शरीर का पालन कैसे करूँगा । कैसे आश्चर्य की बात है कि जन्म भर जिस से मित्रता रही उसे तू अजान की भाँति छोड़ चला ! जाते समय एक बेर मुँह से बोला भी नहीं । इतनी निष्ठुरता और चातुर्य तूने कहाँ सीखा ? हाय ! अब मैं मित्रबान्धवहीन होकर कहाँ जाऊँगा ? किस की शरण तूँगा ? किस से जा कर बात करूँगा ? हा ! अब मैं विपन्न हो गया । इसी दिशाये सूनी जान पड़ती हैं और चारों ओर अन्धकार सा छाया है । हा ! अब इस जीवन से क्या लाभ है । हे मित्र, एक बेर मेरी बातों का उत्तर तो दे कि मैं तेरे प्रफुल्लकमल से वदन का देख इस कलेवर को परित्याग करूँ । अब वह तेरा निष्कपट सौहार्द और मित्रता कहाँ गई ? तुम्हारी मीठी मीठी बातें और प्रेममय चितवन का स्मरण करके मेरा कलेजा फटता है । ऋषिकुमार के इसी भाँति अनेक प्रकार के विलाप-कलाप का शब्द मेरे कर्णपुट में पड़ा ।

कपिञ्जल का रोदन सुन कर मेरा प्राण होठों पर आगया और मैं रोते रोते द्रुतवेग से दौड़ी । पग पग पर पाँव फिसलने लगा, पर मैंने मुँह नहीं मोड़ा । वहाँ जाकर क्या देखती हूँ कि जिन के लिए घर बार छोड़ कर इतनी दूर आई वह सरोवर के तीर पर एक लतामण्डप में शिला पर लतापाश बिछाये पड़े हैं ।

कमल, कुमुद, कुवलय इत्यादि नाना प्रकार के पुष्प शय्या के चारों ओर पड़े हैं । कहीं मृणाल पड़ा है और कहीं केले का पत्ता पड़ा है । उनका शरीर ऐसा स्थिर दीख पड़ा जैसे वे बड़े ध्यान से मेरे आने के शब्द को सुन रहे हों अथवा मन में जो बड़ा लाभ हुआ था उसका प्राणायाम द्वारा प्रायश्चित्त कर रहे हों अथवा प्राण ने यह सोच कर कि इनकी अब हमसे बढ़ कर प्रियतम मिला ईर्ष्या से सङ्ग छोड़ दिया हों । अथवा ललाट में त्रिपुण्ड्र, स्कन्धदेश में मृगछाला, कण्ठ में एकावली माला, हाथ में मृणालवलय धारण किये अपूर्व भेष रचे मेरे आने के लिए एका-न्तचित्त होकर आकर्षणमन्त्र पढ़ रहे हों । कपिञ्जल उनका गला पकड़ रो रहे थे । मुझ हत्यारी ने उनके तात्कालिक मृतक शरीर को जाकर देखा । मेरे देखते ही कपिञ्जल और भी ढाड़ें मार मार कर रोने और आँसू की नदी बहाने लगे ।

उस समय मैं अत्यन्त हताश और मूर्छित हुई । मुझे यह जान पड़ता था कि मैं पाताल में धसी जाती हूँ । उसके अनन्तर मैंने क्या किया, कहीं गई, कुछ स्मरण नहीं है । न जाने उस समय मेरा प्राण क्यों नहाँ निकल गया । प्राणप्रियतम ने पयान किया और मैं जीती रही और छाती पीट पीट पिना, माता, सखी इत्यादि को पुकार पुकार बड़े शोक से रोने लगी ।

हे प्राणनाथ ! इस हतभागिनी को छोड़ कर तुम किधर गये । तरलिका जानती है कि मैंने तुम्हारे लिए कितना दुःख और क्लेश भोगा है । तुम्हारे बिना मुझे एक पल शतकल्प के समान बीतता है । भला एक बेर तो आँखें खोल कर मेरी

और देखो ! हा ! अब तुम ऐसे निठुर होगये ! कुछ भी मेरे ऊपर दया नहीं करते ! मैं लज्जा, कुल सब को त्याग कर तुम्हारी शरण आई हूँ । यदि तुम रक्षा न करोगे तो मैं किसके पास जाऊंगी ? अब मुझको और कोई उपाय नहीं सूझता । मुझे तो तुम्हारे अतिरिक्त और कोई इष्ट ही नहीं है । यदि तुम्हीं ऐसे निठुर हो जाओगे तो और कौन पूछेगा ? हा ! निर्दयी प्राण अब भी नहीं निकलता ! न मैंने पिता की प्रीति का स्मरण किया, न भाई के डर का ध्यान किया और न अपने बेगानों की अपेक्षा की, सब परित्याग करके जिस की शरण आई हा ! वह प्राणप्यारा कहाँ है ? क्या उन्होंने मेरे विरह में जीवन त्याग कर दिया ? अरे कृतघ्न प्राण ! अब तू क्यों मेरा पीछा किये है ? आह ! मुझ अभागिन को मृत्यु भी नहीं पूछती ! नसे भी मेरा शरीर स्पर्श करते घृणा होती है । हा ! मैं क्यों तुम्हें इस अनुराग में छोड़ कर घर गई ! वहाँ क्या मिठाई रक्खी थी ? पिता, माता और पुरजन, परिजन मेरा क्या कर लेते ? हाय ! हे प्राणनाथ, अब मैं किस की शरण जाऊँ ? हे वनदेवी, हे वसुन्धरे, मेरी दशा पर अनुग्रह करो और मेरे त्रिषतम को प्राण-दान दो । हाय ! उस समय की सम्पूर्ण बातें तो अब स्मरण भी नहीं हैं । मेरा विलाप सुन कर जड़ जीव भी हाहाकार करते थे और वृक्ष भी पल्लव-पात द्वारा अश्रुपतन करते थे । इतने में फिर चित्त में आया कि अब प्राण आया होगा और मैंने हाथ से उनका हृदय स्पर्श करके देखा, परन्तु कहाँ की बात, स्वासा बहिर्गत होकर कहीं फिर प्रवेश करती है ?

रे एकावली ! तू प्राणप्रियतम को मेरे आने तक जीता न रख सकी ! कपिञ्जल का चरण पकड़ और तरलिका के गले में बाँधें डाल में बार बार रोती और यही कहती थी कि एक बेर प्राणेश्वर को जिला दे । न जाने उस समय सरस्वती आ कर जिह्वा पर बैठी थी क्या, विलाप समय जो बातें सूझती थीं अब ध्यान करने से भी नहीं आतीं । न जाने आँखों में कितना पानी भरा था कि दोनों नेत्रों से सुरसरी की धारा की भाँति अनवरत आँसू जारी थे, पर पानी घटता न था और बारंवार मूच्छा आती थी !

इस प्रकार अपना वृत्तान्त कहते कहते महाश्वेता को उन बातों का स्मरण हुआ और वह मूर्छित होकर शिला पर से गिरना चाहती थी कि चन्द्रापीड़ ने हाथ फैला कर पकड़ लिया और आँसू से भीजे हुए छाल से वे वायु करने लगे । कुछ कालानन्तर जब मूच्छा गई तब चन्द्रापीड़ ने शोकयुक्त मुँह बना कर कहा—“हा ! मैंने कैसा पाप किया । तुम्हारे विस्मृत दुःख को उभाड़ दिया । अब और शेष वृत्तान्त कहने का कुछ प्रयोजन नहीं है । इसके सुनने से हमें भी दुःख होता है । जो हो, पतित प्राण को बार बार दुःखस्मरणरूप हुताशन में जलाने की कुछ आवश्यकता नहीं है ।”

महाश्वेता ने ठण्ठी साँस भर कर कहा—राजकुमार, यदि यह पापी प्राण उस भयङ्कर रात को न निकला तो अब निकलने का कुछ भय नहीं । मैं ऐसी हतभागिनी हूँ कि मृत्यु भी मेरे

निकट आते डरती है । इस निर्दय पाहनहृदय पर शोक और दुःख दोनों अलीक हैं । यह आप तो निर्लज्ज हुआ ही है पर अपने सङ्ग मुझे भी निर्लज्ज करता है । जो दुःख मैं सह चुकी हूँ अब उसके कहने में क्या क्लेश होगा । विष खानेवाले को उसके स्मरण से क्या होता है ? मैं जो अपना शोकवृत्तान्त आपके सम्मुख वर्णन कर चुकी अब उससे बढ़ कर क्लेशकर बात कौन होगी जिसके कहने और सुनने में परिताप होगा ? जिस दुराशा—मृगतृष्णा—को अवलम्बन करके इस अकृतज्ञ शरीर को वहन करती हूँ और उस दुःखकर कर्म में पीछ प्राणधारण को हेतुभूत जो अद्भुत घटना हुई वही इस वृत्तान्त का शेष भाग है । सुनिए ।

इतना विलाप करने के अनन्तर अपने प्रियतम के विरह के प्राशस्त्रिन में पाण्डित्य विश्रय करके मैंने तरलिका में करा

और हाथ में चूड़ा धारण किये उतरा । ऐसी कान्ति तो कभी किसी ने न देखी, न सुनी । उनके शरीर की प्रभा से दश दिशायें प्रकाशमय हो गई और चारों ओर अमृत की वर्षा होने लगी । उन्होंने दोनों हाथों से प्रियतम के मृत देह को पकड़ कर कहा—
“हे महाश्वेता, प्राण त्याग न करना, फिर तुझसे पुण्डरीक से भेंट होगी” । यह कह वे आकाशपथ को चले गये । इस अकस्मात् आश्चर्य-घटना से भोत होकर मैंने कपिञ्जल से इसका तत्त्व पूछा, परन्तु उन्होंने मेरी बात न सुनी, वरन “दुष्ट, मेरे

भाई को कहाँ लिये जाता है ?” कह कर वे उन्हीं के पीछे दौड़े । मैं सिर उठा कर ऊपर देखने लगी और वे तारों में मिल गये । उस समय कपिञ्जल का लोप हो जाना प्राणप्यारे के देहान्त से द्विगुण क्लेशकर बोध हुआ । परन्तु ऐसा कोई हितू न था जो इन विलक्षण व्यापारों का मर्म बतलाता । अधीर होकर मैंने तरलिका से पूछा, “तू कुछ समझती है ?” वह बेचारी मेरे प्राणत्याग करने के भय से थर थर काँप रही थी । वह डरती डरती बोली—“मैं कुछ नहीं समझती ? यह बड़ा अद्भुत खेल है । मेरी जान में यह महापुरुष कोई देवता था, मनुष्य नहीं था और जो बात वह कह गया है वह भी सच है । भूठ बोलने का इस समय कोई अवसर न था । जो हो, अब सतों होने की अभिलाषा को चित्त से निकाल दो और कपिञ्जल के आने तक यहीं ठहरी रहो । उनके मुख से सब बातों को सुन कर फिर जो उचित हो करना ।” स्त्री का स्वभाव क्षुद्र और सरल तो होता ही है, मैंने उस दुराशा को अवलम्बन करके तरलिका ही की बातों को युक्तियुक्त समझा । आशा का कैसा अमित प्रभाव है । इसके सहारे से मनुष्य बड़े बड़े भयङ्कर और लहराते हुए समुद्र को भी पार कर जाते हैं । इसके प्रभाव से दीन दुःखी लोग भी मुँह चिकनाये फिरते हैं । इसके कारण वं पुत्र-कलत्रादि के विरह-दुःख भी भूल जाते हैं । केवल उसी आशा के अवलम्बन करने से उस सुनसान सरोवर के तीर पर वह कराँल काल-यामिनी व्यतीत हुई । परन्तु एक एक क्षण युगशत के समान जान पड़ता था । प्रातःकाल उठ कर मैंने सरोवर में स्नान किया । संसार की

असारवा, समस्त वस्तुओं की अनित्यता, अपनी हवभाग्यता को देख कर मेरे मन में वैराग्य उत्पन्न हुआ और प्रियतम का बही कमण्डल और रुद्राक्षमाला लेकर ब्रह्मचर्य्य धारण कर अविकल भक्ति-सहकार-पूर्वक इस अनाथनाथ त्रैलोक्यनाथ की शरण आई । विषय-वासना और पिता माता का स्नेह भी मैंने परित्याग कर दिया और इन्द्रिय का सुख और भाई-बन्धु के प्यार सबको तिलाञ्जलि दे दी ।

दूसरे दिन माता पिता को यह सम्पूर्ण वृत्तान्त सुन पड़ा और वे लोग सब परिजन और बन्धुजनों को साथ लेकर यहाँ आये और मुझे, नाना प्रकार की सन्तोष की बातें कह कर, समझाने लगे और घर ले जाने को उद्यत हुए; परन्तु जब उन्होंने देखा कि उनकी बातों ने मेरे हृदय पर असर न किया तब निराश होकर अपने अपत्य-स्नेह से कई दिन पर्यन्त यहाँ टिके रहे और नित्य प्रति समझाते थे । अन्त को दुःखित-चित्त होकर घर फिर गये । तब से अहर्निश रोने के अतिरिक्त और कोई कर्म नहीं । गोमुखी में हाथ डाले जप के मिस से उसी मोहनी मूर्ति का ध्यान करती हूँ और अनेक प्रकार के नियम अवलम्बन द्वारा इस शरीर के बोझ को मैं प्रति दिन घटाती हूँ । इसी गिरि-गुहा में निवास करना, इसी सरोवर में स्नान करना और महादेव की सेवा करना मेरा काम है । तरलिका के अतिरिक्त और कोई बोलनेवाला भी नहीं है । मैं जानती हूँ कि मुझ ऐसी पापिन और अभागिन दूसरी कौ पृथ्वीतल पर न मिलेगी । पाप की सीमा को तो पहुँच ही गई थी । ब्रह्महत्या का शय भी चित्त से जाता

रहा । मेरा मुँह देखने और मुझसे संलाप करने से भी कुदृष्ट उत्पन्न होता है ।

महाश्वेता यह कह कर भोजपत्र से मुँह ढाँक कर रोने लगी, मानो शरत्काल के शुभ्र मेघ ने चन्द्रमण्डल को छिपा लिया और वर्षा होने लगी ।

महाश्वेता के विनय, सुशीलता और महानुभावता से मोहित होकर चन्द्रापीड़ ने उसको पहले ही से स्त्री-रत्न समझा था । उसके आत्मवृत्तान्त से उसका पातिव्रत धर्म देख कर वे और भी चमत्कृत हुए । वे बड़े प्रेम से बोले कि “जो लोग स्नेह के उचित अनुष्ठान कर्म में असमर्थ होकर केवल आँसू बहाते हैं वे बड़े कृतघ्न हैं । तुमने निष्कपट अनुराग और सच्ची प्रीति प्रकाश की है । अब क्यों अपने को अकृतज्ञ और लुब्ध समझती हो । शुद्ध प्रेम-प्रकाश के नवीन पथ को उद्भावन कर अपरिचितों की भाँति आजन्म परिचित बान्धव जनों को परित्याग और अकिञ्चित्कर पदार्थों की भाँति संसार के सुख को जलाञ्जलि देकर तुम ब्रह्मचर्य धारण करके तपस्विनी भेष से जगद्दोश की आराधना करती हो और एकाग्रचित्त हो कर प्राणेश्वर से मिलने की चिन्ता करती हो । इसके अतिरिक्त शुद्ध प्रेम साधन का और कौन उपाय हो सकता है ? मरे के पीछे मरना बुद्धिमानों का काम नहीं है । केवल मूढ़ लोग मोहवश उस पथ को ग्रहण करते हैं । न तो इस करने से मृतक जीव फिर जी सकता है, न परलोक का मार्ग सरल होता और न प्रियतम से भेंट हो सकती है । वह जीव अपने शुभाशुभ कर्म के अनुसार

फल पाता है फिर इस मरने से क्या ? आत्महत्या के पाप के कारण उसको चिरकाल पर्यन्त निश्चय नरक भोगना पड़ता है । जीवित रह कर मनुष्य शुभकर्म-साधन द्वारा अपनी और आद्ध-तर्पण द्वारा मृतक व्यक्ति की भी मुक्ति कर सकता है परन्तु मर जाने से किसी का कुछ उपकार नहीं हो सकता । सती होना पतिव्रता का लक्षण नहीं है । देखो रति ने अपने पति कामदेव के मरण के पश्चात् अपने शरीर को नहीं जलाया । शूरसेन राजा की बेटी पृथा पाण्डु के मरने पर सती नहीं हुई, न विराट राजा की कन्या उत्तरा अभिमन्यु के मरने पर उनकी अनुगामिनी हुई । धृतराष्ट्र की पुत्री दुःशला ने भी, जब उसका पति जयद्रथ मर गया, देह-परित्याग नहीं किया । पर वे सब जगत् में पतिव्रता प्रसिद्ध हैं । वे बुद्धिमती थीं; धर्म के पथ को पहिचानती थीं । सच तो यों है कि जिनको विरह-दुःख सहने का सामर्थ्य न थी उन्होंने यही उपाय अच्छा समझा । अहङ्कार से भी प्रायः स्त्रियाँ सती होती हैं । जो धर्म के मार्ग को जानती हैं वे ऐसा कभी नहीं करतीं । आपको तो एक महापुरुष ने आशा दी है । आपको क्या पड़ी थी जो झूठ बोलते । ईश्वर अनुग्रह करेगा तो निस्सन्देह तुम्हारा मनोरथ सिद्ध होगा । मर करके फिर जीना यह बात नितान्त असम्भव नहीं है । प्राचीन काल में गन्धर्वराज विश्वावसु से मेनका को एक कन्या उत्पन्न हुई थी । उसने भी आत्महत्या की थी किन्तु रुद्र नामक ऋषिकुमार ने अपने दीर्घायु में से आधा उसे देकर फिर उसे जिलाया था । अभिमन्यु के पुत्र परीक्षित अश्वत्थामा के अस्त्र

से मारे गये परन्तु वासुदेव के अनुग्रह से फिर जी उठे । गदाधर की कृपा से कोई बात असंध्य नहीं है । उन्हें असंध्य भी साध्य है । शोक मत करा । तुम्हारा मनोरथ शीघ्र ही सिद्ध होगा । संसार में आते ही मनुष्य को विपत्ति की माला पहनाई जाती है किन्तु सांसारिक कोई वस्तु स्थायी नहीं है । कुटिल विधाता का अकृत्रिम प्रणय देखकर ईर्ष्या होती है और वे तुरन्त उसके विनाश का उपाय करते हैं । अब धीरज धरो और व्यर्थ आत्मा को क्लेश मत दो ।” इसी भाँति नाना प्रकार के सन्तोष वचन कह कर उन्होंने महाश्वेता को शान्त किया । कुछ काल के अनन्तर फिर पूछा कि हे देवी, तुम्हारी सहकारिणी और कुंशांशभागिनी कहाँ है ?

महाश्वेता ने कहा—प्यारे ! मैं कह चुकी कि अप्सराओं का एक कुल अमृत से उत्पन्न हुआ है । उस कुल में मदिरा नाम एक कन्या थी । गन्धर्वों के राजा चित्ररथ ने उसके गुणों से वशीभूत होकर छत्र चामर इत्यादि त्याग उससे विवाह कर लिया । दैवसंयोग से वह गर्भवती हुई और उसके एक कन्या उत्पन्न हुई । उसका नाम कादम्बरी पड़ा और वह निर्मल शशिकला की भाँति दिन दिन बढ़ने लगी । उसके सौन्दर्य को देख कर रति भी लज्जित होती थी । मैं और वह बालपन से एक सङ्ग रहती थीं और एकही साथ खाती पहिनती थीं और एक ही गुरु से नाचना और गाना बजाना सीखती थीं अतएव हम दोनों में बड़ा प्रेम था अर्थात् मैं और वह “द्वै शरीर मन एक” की भाँति रहती थीं । न मैं उसको क्षण भर छोड़ सकती थी और न वह

मुझे । मेरी यह दशा सुन कर उसने प्रण किया है कि जब तक महाश्वेता इस विरह की अवस्था में रहेगी, मैं भी विवाह न करूँगी । यदि पिता माता बलपूर्वक मेरा विवाह कर दें तो मैं भूख से अपने को मार डालूँगी, नहीं तो आग में जल कर मर जाऊँगी वा फाँसी लगा कर प्राण त्याग करूँगी । गन्धर्वराज चित्ररथ और रानी मदिरा यह सुन कर बड़े दुःखित हुए । केवल एकही तो उनके पुत्रो है । इसी से मारे भय के उसे प्राण संविशंप्यार करते हैं । उसके सम्मुख कोई बात नहीं कह सकते । आज प्रातःकाल उन्होंने क्षीरोद नामक एक सेवक से मेरे पास कहला भेजा कि “बेटी, कादम्बरी ने हठ किया है और तेरे बिना उसको कोई समझा नहीं सकता । तुझे जो उचित हो कर ।” मैंने क्षीरोद के साथ तरलिका को कादम्बरी के पास यह कह कर भेजा है कि “हे सखी, मैं तो आपही मर रही हूँ । क्यों मुझे क्लेश देती है । तेरी प्रतिज्ञा सुन कर मुझे बड़ा क्लेश हुआ । यदि तू चाहती है कि मैं जीती रहूँ तो कभी गुरुजनों की बात न टालना ।” बस, वह उधर गई है और आप इधर आये ।

इतने में चन्द्रमा उदय हुआ और तारागण की मण्डली आकाश में सुशोभित हुई । मानो रात्रि ने गगनमण्डल के तिमिर के नाश करने को करोड़ों दीपक जलाये हों । महाश्वेता ने शीतल शिला पर लता-पत्र बिछा कर शयन किया । चन्द्रापीड़ भी उसे सोते देख लोटे और ‘वैशम्पायन क्या सोचते होंगे, पत्रलेखा क्या समझती होगी, और सब साथी लोग हमारे चले आने से कैसे दुःखित होंगे’ इसी प्रकार का सोच करते करते सो

गये । प्रातःकाल महाश्वेता ने उठ कर नित्यकर्म करके स्नान ध्यान किया और फिर वह जप करने को बैठी । चन्द्रापीड़ भी उठ कर प्रातःकालिक नियम में लगे हुए थे कि एक दृष्ट पुष्ट षोडश वर्ष का पचहत्था जवान हाथ में तलवार लिये आया और उसके साथ साथ तरलिका आई । चन्द्रापीड़ का अनुपम सौन्दर्य देख कर तरलिका के मन में शङ्का हुई और वह अनेक प्रकार तर्कना करती हुई महाश्वेता के समीप जा बैठी । वह युवा पुरुष अर्थात् केयूरक भी एक शिला पर बैठा । महाश्वेता ने तरलिका से अपनी प्रिय सखी कादम्बरी का कुशल पूछा और कहा कि जो मैंने कहा था उसे उसने माना न ? उसकी इच्छा क्या है ? उसने कहा—“आपकी सखी अच्छी तरह है । आपका संदेसा सुन कर वह बहुत रोई और जितनी बातें कहीं वह तो मुझे स्मरण नहीं हैं । देखिए केयूरक आपसे कहता है ।”

केयूरक ने हाथ जोड़ कर कहा कि ‘कादम्बरी ने कहा है कि जो आपने तरलिका से कहला भेजा था वह क्या किसी के कहने से कहलाया था या हमारी परीक्षा लेने को, वा मैं अभी तक घर में हूँ इसका ताना देती हो ? यदि मन से है तो निस्सन्देह तुम्हारे मन में कुछ कपट है । मैं नहीं जानती थी कि इतने दिनों के अनन्तर तू मुझे छोड़ देगी । तू जानती है कि मैं तुम्हें कैसा प्यार करती हूँ जिस पर भी तूने ऐसी निठुर बात कहला भेजी । मैं तो तुम्हको बड़ी दयालु जानती थी परन्तु ऐसा व्यङ्ग्य न जाने तूने कहाँ से सीखा है ।

मैं भी तो तेरे दुःख से दुःखी हूँ । इस समय कैसे विवाह के प्रमोद में युक्त हो सकती हूँ । इसी कारण मैंने ऐसी प्रतिज्ञा की है । मनुष्य की कौन कहे, पशु-पक्षियों को तो सहचारियों का दुःख होता ही है । देखो जब सूर्य अस्त हो जाता है और कमल बन्द हो जाता है तब उसकी सहचरी चकई भी अपने पति का साथ परित्याग करके रां रां कर रात काटती है । जिसकी सखी विषय-वासना छोड़ जङ्गल में क्लेश भोग करती है वह यदि सुख की अभिलाषा करे तो लोग उसे क्या कहेंगे ? मैंने गुरु-जनों का वचन उल्लङ्घन करके और लांकलाज छोड़ कर ऐसी प्रतिज्ञा की है । अब जिसमें प्रण न जाय वैसी बात करना उचित है ।” यह कह कर केयूरक चुप हो रहा ।

इन बातों को सुन महाश्वेता कुछ काल पर्यन्त अधोमुखी बैठी रही और फिर बोली कि हे केयूरक, तुम चलो, मैं स्वयम् कादम्बरी के निकट चलती हूँ । जब वह चला गया तब महाश्वेता ने चन्द्रापाड़ से कहा कि हेमकूट एक अति रमणीक स्थान है । वहीं कादम्बरी के पिता की राजधानी है । यदि देखने की इच्छा हो और कुछ हानि न समझिए तो मेरे साथ चलिए । आज वहाँ टिक कर कल फिर आऊँगी । जब से आपसे भेंट हुई है मेरा दुःख बहुत क्षुद्र हो गया है और शोक भी दूर हो गया है । आप मेरे अकारण मित्र हो । इससे आप का सङ्ग छोड़ा नहीं जाता । लोगों ने कहा है कि साधु के समागम से स्वाभाविक प्रमोद उत्पन्न होता है और दुःख सब भूल जाता है । आपके गुण और सौजन्य ने मेरे मन को लुभा लिया है । जब तक आपका दर्शन

होता है तभी तक लाभ सही । चन्द्रापीड़ ने उत्तर दिया कि हे देवी, मैं तो अपना प्राण प्रथम ही से सङ्कल्प कर चुका हूँ । अब तुम जिधर ले जाओगी उधर जाऊँगा और जो आज्ञा देगी वही करूँगा ।

दोनों गन्धर्वनगर को चले । नगर में पहुँच कर राजमहल में गये और कादम्बरी के प्रासाद के द्वार पर पहुँचे । चेरी मार्ग दिखलाने लगी । राजकुमार की दृष्टि जिधर पड़ती थी उसी ओर झुंड की झुंड सुन्दर सुन्दर षोडशवयस्का कन्यायें अनेक प्रकार के आभूषण पहिरे देख पड़ती थीं । राजकुमार उनकी मनोहर शरीरकान्ति को देख कर बड़े विस्मयापन्न हुए । उनके वीणा के राग में मिले मीठे मीठे सुर सुन कर उनका हृदय आनन्दमय हो गया । इतने में वे कादम्बरी के महल में पहुँच गये । भीतर घुसते ही क्या देखते हैं कि बहुत सी स्त्रियाँ अनेक प्रकार के वाद्य यन्त्र हाथ में लिये मण्डल बाँध कर बैठी हैं और उनके मध्य में कादम्बरी एक रत्नजटित शय्या पर लेटी केयूरक से महाश्वेता का वृत्तान्त और तत्रागत पुरुष का नाम, वयस, वंश और आगमन-हेतु पूछ रही है । और खवासिन खड़ी चमर भल रही है । जैसे चन्द्रमा के दर्शन से वारिधि हुलसता है उसी भाँति कादम्बरी को देख कर चन्द्रापीड़ का हृदय हुलसने लगा और वे मन में सोचने लगे कि अहा ! आज मेरा जन्म सफल हुआ । ऐसाराूप और सौन्दर्य तो आज पर्यन्त आँखों ने कभी नहीं देखा था । जन्मान्तर में मेरी आँखों ने बड़ा पुण्य किया था कि आज कादम्बरी का मनोहर मुखारविन्द देखने में आया । हा ! ब्रह्मा ने मेरा

शरीर नेत्रमय क्यों नहीं किया ! नहीं तो सब अङ्गों से एक बेर खूब देख कर तृप्त हो जाता । अब तो इच्छा पूरी नहीं होती । विधाता ने इतना सौन्दर्य कहाँ से उत्पन्न किया ? ऐसा जान पड़ता है कि पहले इसी की रचना की; फिर जो कुछ सुन्दरता बची वह कमल, कुमुद, कुवलय इत्यादि कोमल वस्तुओं को दी । इतने में दोनों की आँखें चार हुईं । कादम्बरी ने कहा कि केयूरक जिस पुरुष का समाचार कर्ता था वह यही जान पड़ता है । अहा ! इसका शरीर कैसा सुन्दर है । इस गन्धर्वनगर में तो ऐसा श्रीमान् कोई नहीं है । इस प्रकार दोनों की सुन्दरता ने एक दूसरे के मन को हर लिया । कादम्बरी बार बार चन्द्रापीड़ के चन्द्रवदन की शोभा देखती थी पर तृप्त नहीं होती थी । जै बार देखती थी ते बार नई नई प्रीति उपजती थी ।

कुछ कालानन्तर कादम्बरी महाश्वेता को देख आनन्दमग्न हो कर बड़ी प्रीति से उठी और उसने उसका आलिङ्गन किया । महाश्वेता ने भी प्रत्यालिङ्गन करके और चन्द्रापीड़ की ओर अङ्गुल्यादंश करके कहा कि ये भरतखण्ड के राजा तारापीड़ के पुत्र हैं और नाम इनका चन्द्रापीड़ है । दिग्विजय करते करने ये मेरे देश में आ पहुँचे । मैं तो इनको देखते ही वश हो गई हूँ किन्तु उन्होंने क्या मन्त्र किया वह मैं नहीं जानती । विधाता भी कैसा चतुर है । देखो उसने कितनी सुन्दरता एकत्र की है । इनके सहवास से मृत्युलोक मारे अभिमान के सुरनाक को तुच्छ समझता है । तुमने सम्पूर्ण विद्या और गुणों का समूह नहीं देखा था इसलिये इनको बड़े निवेदन से यहाँ लाई हूँ । लज्जा और शङ्का छोड़ अस-

डकुचित चित्त होकर इनसे समालाप करो । महाश्वेता और कादम्बरी दोनों एक पर्यङ्क पर बैठीं और राजकुमार एक दूसरे सिंहासन पर बैठे । कादम्बरी ने सङ्केत द्वारा सङ्गीत को बन्द करवा दिया तब महाश्वेता ने स्नेहपूर्वक कादम्बरी का कुशल पूछा और उसने उत्तर दिया कि ईश्वर की दया से सब कुशल है ।

काम का भी कैसा कठिन प्रभाव है कि वह बड़े बड़े प्रणय-पराङ्मुख लोगों के मन को भी एक बेर डुला देता है । कादम्बरी के मन में भी मनाभव का सञ्चार हुआ । जिस समय वह महाश्वेता से बात करती थी बारम्बार नैनो को चुरा कर चन्द्रापीड की ओर देखती थी । उसने भी समझा कि दोनों का मन प्रीति के धागे में बँध गया । जब कादम्बरी उसे पान देने लगा तब उसने कहा—हे सखी, अतिथि का सत्कार पहले करना चाहिए । चन्द्रापीड आज पहले पहल तुम्हारे घर आये हैं, पहले उन्हें दो फिर मैं खाऊँगी । कादम्बरी ने मुसकुरा कर मुँह फेर लिया और धीरे से बोली कि हे सखी ! बिना जाने मनुष्य से इतनी प्रगल्भता मुझसे नहीं हो सकती । लज्जा मेरा हाथ खींचती है । इसलिए मेरे हाथ से लेकर तुम्हीं मेरी ओर से उनको दे दो । महाश्वेता ने हँस कर कहा कि मैं तुम्हारी प्रतिनिधि कहाँ कहाँ बनूँगी ? अपना काम तुम आपही करो । जब महाश्वेता ने बड़ा हठ किया तब कादम्बरी ने विवश होकर अपने वस्त्रों को भली भाँति बटोर शरीर को सिकोड़ के आँखें मूँद थोड़ा सा हाथ बढ़ा कर प्रेमभरी वाणी से कहा—“लीजिए” और चन्द्रापीड ने हँस कर पान ले लिया ।

उसी समय एक सारिका ने आकर क्रोध से कहा—“बहिन ! इस दुष्ट पत्नी को तुम बरजो । यदि यह मेरा शरीर छूएगा तो मैं शपथ करके कहती हूँ कि अपना प्राण न रक्खूँगी ।” कादम्बरी सारिका के क्रोधमय वचन को सुन कर बहुत हँसी । महाश्वेता ने मदलेखा से पूछा कि सारिका क्या कहती है ? क्योंकि उसकी बात कुछ समझ में नहीं आती । मदलेखा ने हँसके कहा कि कादम्बरी ने इस कालिन्दी नाम सारिका को परिहास नाम शुक से ब्याह दिया है । आज प्रातःकाल इसने उसको तमालिका के साथ हँसी करते देखा, तब से रूठी है और बोलती नहीं, न उसकी ओर देखती है और न उसको अपना शरीर छूने देती है । हम लोगों ने कितना समझाया पर मानती नहीं । चन्द्रापीड़ ने हँस कर कहा—“हाँ मैंने भी सुना है कि परिहास तमालिका को बहुत प्यार करता है । जान बूझ कर सारिका का ऐसे दुष्ट पक्षी के साथ संस्कार करना परम अन्याय है । जो हो, अब तो उस दुष्ट दासी का यह दुराचार छुड़ाना ही चाहिए ।”

इस प्रकार नाना भाँति हँसी दिल्लगो हो रही थी कि एक चेरी ने आ कर कहा—“महाश्वेता, तुमको राजा और रानी बुलाते हैं ।” महाश्वेता ने वहाँ जाते समय कादम्बरी से पूछा कि इस समय चन्द्रापीड़ कहाँ रहेंगे ? कादम्बरी ने कहा कि “तू ऐसा क्यों पूछती है ? मैं तो मन, प्राण, गृह इत्यादि सब उनके अर्पण कर चुकी हूँ । उनको अधिकार है जहाँ चाहें रहें ।” “तुम्हारे मन्दिर के समीप प्रमदावन में क्रीड़ापर्वत के नीचे जो मणि का महल है उसी में चल कर ठहरें तो अच्छा होगा ।”

यह कह कर महाश्वेता चली गई । अनेक वादकों और गायकों को सङ्ग कर कादम्बरी ने चन्द्रापीड़ को वहाँ जाने का सङ्केत किया । केयूरक मार्ग दिखलाता हुआ आगे चला । उसके जाने पर कादम्बरी शय्या पर पौढ़ी । क्या देखती है कि लज्जा ने आ कर उससे कहा कि “तूने आज क्या किया ? आज तुझको क्या होगया ? कुलीन स्त्रियों को ऐसा उचित नहीं है।” और वह मन में सोचने लगी कि देखो काम के वश हंकार मैंने यह क्या दुष्कर्म किया । एक उदासीन मनुष्य के सम्मुख ऐसा भाव प्रकट किया । उनकी चित्तवृत्ति, अभिप्राय और स्वभाव कुछ जाना नहीं और मन, प्राण इत्यादि उनके अर्पण किया । लोग यह समाचार सुन कर मुझे क्या कहेंगे ? मैंने अपनी सखियों से प्रतिज्ञा की थी कि जब तक महाश्वेता वैधव्य-भोग करेगी मैं भी सांसारिक सुख से विरक्त रहूँगी । मेरी वह प्रतिज्ञा आज कहाँ गई ? जो इस बात को सुनेगा अवश्य हँसेगा । इस में सन्देह नहीं । हमारे पिता यह व्यापार सुन कर मन में क्या कहेंगे और माता क्या सोचेंगी ? महाश्वेता को मैं क्या कह कर मुँह दिखलाऊँगी ? जो हो, अब तो मेरा लाघव प्रकट हुआ । ऐसा बोध होता है कि विधाता और कामदेव ने परस्पर सम्मति करके मेरे लघुत्व-प्रकाश करने के निमित्त इस उदासीन को यहाँ भेजा है । जब मन में अनुराग का सञ्चार हुआ फिर उसको निर्मूल करना बड़ा कठिन है । कादम्बरी इस प्रकार मन में विलाप कर रही थी कि प्रणय ने आ कर कहा “तू क्या करती है ? तेरे अलीक-प्रेम और कपट-मित्रता से अप्रसन्न हो कर चन्द्रापीड़ प्रस्थान की चेष्टा कर रहे हैं ।” फिर उसको

कल न पड़ी और शय्या से उठ खिड़की खोल क्रीड़ापर्वत की ओर एकटक देखने लगी ।

चन्द्रापीड़ मणिमन्दिर में जा शय्या पर पौढ़े और विचार करने लगे कि राजकुमारी ने जो यह सब भाव मेरे सामने किये सो क्या स्वाभाविक थे वा मकरध्वजप्रेरित । उसकी उस समय की चेष्टा स्मरण करके मेरा हृदय व्यग्र हो रहा है । लोगों की दृष्टि बचा मेरी ओर कटाक्ष करके कैसा देखती और मुसकुराती थी । बिना काम की प्रेरणा ऐसा हो नहीं सकता । जो हो, अब तो अपने को सँभालना उचित है । पहले उसकी परीक्षा करनी चाहिए । यह सङ्कल्प कर राजपुत्र ने गाने और बजाने वालियों को गाना बजाना आरम्भ करने की आज्ञा दी । जब गाना समाप्त हुआ तब उपवन की शोभा देखने के लिए वे क्रीड़ापर्वत के शिखर पर चढ़े । कादम्बरी उनको खिड़की से देख कर महाश्वेता की आगमप्रतीक्षा के मिस से अटारी पर चढ़ गई और वहाँ से अनेक प्रकार के मनाहर कामसङ्केत करने लगी । और ऐसी उन्मत्त हो गई कि किसी बात का कुछ ध्यान न रहा । इतने में महाश्वेता ने आकर प्रतिहारी द्वारा संवाद दिया और उसने शिखर से उतर कर स्नान, भोजन आदि दिवसक्रिया समाप्त की ।

चन्द्रापीड़ स्नान भोजन कर मरकत शिला पर बैठे थे कि तमालिका, तरलिका और और सहेलियों के साथ कादम्बरी की प्रधान परिचारिका मदलेखा आई । कोई तो हाथ में सुगन्धमय उबटन, कोई मालती की माला, कोई श्वेत दुकूल और एक सखी एक एकछड़े मोती की माला लिये थी । उसकी आभा की

प्रचण्डता से चारों ओर प्रकाश हो गया। जब मदलेखा निकट पहुँची चन्द्रापीड़ ने यथोचित आदर-सत्कार किया। मदलेखा ने अपने हाथ से राजकुमार के अङ्ग में अङ्गराग का लेप किया और वस्त्र पहना कर हाथ में माला लेकर वह बोली कि आपके सरल स्वभाव, मधुर व्यवहार और शान्ति सौजन्य से वशीभूत होकर कादम्बरी ने यह प्रेमसङ्कत माला आपके लिये भेजी है। कुछ अपना ऐश्वर्य वा सम्पत्ति दिखलाने के लिये नहीं भेजी है। इसको शुद्ध प्रीतिमङ्केत समझ कर अङ्गीकार कीजिये। समुद्र ने यह हार वरुण को दिया था और वरुण ने गन्धर्वराज को और गन्धर्वराज ने कादम्बरी को। सिंधु-मथन के समय देवता और असुरों ने सब रत्न बाँट लिये। केवल यही बच गया था। अतएव इसका नाम शेष रक्खा गया। जो वस्तु जिस योग्य होता है वह वहीं शोभा पाती है। यह सोच कर कादम्बरी ने आपके लिये यह हार भेजा है। यह कहकर उसने उनके गले में हार पहना दिया। राजकुमार गन्धर्वकुमारी का सौजन्य और दाक्षिण्य और मदलेखा के मनोहर वचन से चमत्कृत और विस्मित होकर बोले—“क्यों काँटे में घसीटती हो। भला मैं तुम्हारी बातों को टाल सकता हूँ ?” इसके अनन्तर नाना प्रकार का वार्तालाप कर उन्होंने मदलेखा को विदा किया।

कादम्बरी चन्द्रापीड़ के न देखने से विकल हो फिर अटारी पर चढ़ी। देखा तो वे वही मोती की माला पहने चबूतरे पर विहार कर रहे हैं। उनको देख प्रफुल्लित हो वह नाना प्रकार का हाव भाव करने लगी। इतने में सन्ध्या हुई सूर्यमण्डल, दिङ्मण्डल और गगनमण्डल तीनों रक्तवर्ण हुए और अँधेरा होने

लगा और दोनों नीचे उतर गये । जब थोड़ी रात गई और चन्द्रापीड़ शय्या पर पड़े केयूरक ने आकर कहा—“राजकुमार, कादम्बरी आपके दर्शन की अभिलाषा रखती है और द्वार पर खड़ी है ।” इतना सुनते ही राजा चौंक कर उठे और देखा कि सखीगण समेत कादम्बरी सामने खड़ी है, यथोचित आदर के अनन्तर उन्होंने सबको विनयपूर्वक बैठाया और वे फिर बोले—“यद्यपि मैं किसी योग्य नहीं हूँ पर आपने मेरे ऊपर बड़ा अनुग्रह किया । आपकी उदारता और सौजन्य में कुछ सन्देह नहीं ।” कादम्बरी ने लज्जित होकर मुँह नीचा कर लिया । इसके अनन्तर भारतवर्ष, चन्द्रापीड़ के बन्धु-बान्धव, जनक-जननी और राज्य-विषयक अनेक प्रकार की बात चीत में रात हो गई । कादम्बरी केयूरक को राजकुमार के समीप छोड़ आप शयनागार में जाकर पर्यङ्क पर सोई और चन्द्रापीड़ ने भी सुशीतल शिला पर लंटे लंटे राजकुमारी के स्वभाव, महाश्वेता के स्नेह, राजसहेलियों के सौजन्य और गन्धर्वनगर की सुन्दरता और विभव का ध्यान करते रात व्यतीत कर दी ।

जब भोर हो गई राजकुमार ने उठ कर हाथ मुँह धो प्रातःकाल की क्रिया समाप्त कर केयूरक का राजकुमारी का समाचार जानने की इच्छा से भेजा । उसने आ कर उत्तर दिया कि कादम्बरी और महाश्वेता दोनों मन्दर नाम मङ्गल के नीचे आँगन में बैठी हैं । चन्द्रापीड़ ने वहाँ जा कर देखा कि सब भाँति भाँति के वस्त्र पहन अनेक देवताओं का स्तुतिपाठ कर रही हैं । महाश्वेता दर्शनच्छुक अतिथियों का आदर-सत्कार कर रही है

और कादम्बरी महाभारत का पाठ सुन रही है । वे आप भी एक कोने में बैठ गये और महाश्वेता की ओर देख कर हँसे । उस ने राजकुमार का अभिप्राय समझ कादम्बरी से कहा कि राजकुमार के साथियों ने इनका कुछ समाचार नहीं पाया । इससे वे उद्विग्न हो रहे हैं और इनकी भी जाने की इच्छा है किन्तु तुम्हारे गुण और सौजन्य से वशीभूत हो कर कुछ कह नहीं सकते । आज्ञा करो तो जायँ । “सखी, मैं तो सब प्रकार से उनकी दासी हूँ । जो वे कहें मुझे सब स्वीकृत है” । यह कह कर कादम्बरी ने गन्धर्वकुमारों को बुला कर कहा कि तुम लोग जाओ और इनको इनकी सेना में पहुँचा आओ । राजकुमार ने उठ कर महाश्वेता से बिदा माँगी और फिर राजकुमारी से कहा कि बहुभाषी लोगों का कोई विश्वास नहीं करता । अतएव बहुत कहना उचित नहीं । मैं केवल यही कहता हूँ कि ‘जब परिजनों की चरचा चले तो मुझे भी स्मरण करना’ यह कह उन्होंने वहाँ से प्रस्थान किया । कादम्बरी प्रेममय दृष्टि-द्वारा एकटक देखती थी परन्तु थोड़ी देर में वे दूर निकल गये ।

केयूरक एक घोड़ा लाया था । चन्द्रापीड़ उस पर चढ़ गन्धर्वकुमारों को साथ ले हेमकूट के समीप होकर चले जाते थे, परन्तु प्राणप्यारी कादम्बरी की मोहनी मूर्ति हृदय में विराजमान थी । वरन दिशा भी तन्मयी दीख पड़ती थी । ऐसा बाध होता था जैसे कादम्बरी यह कहती हुई पीछे पीछे चली आती है कि ‘हे प्रियतम, तुम्हारा वियोग मुझसे सहा नहीं जाता । मैं तुम्हें कदापि न जाने दूँगी’ । इसी अवस्था में वे क्रमशः आच्छाद सरावर के

तीर महाश्वेता के आश्रम के निकट पहुँचे । वहाँ से इन्द्रायुध की टापों का चिह्न देखते देखते अपनी सेना में प्राप्त हुए और उन्होंने गन्धर्वकुमारों को अनेक प्रकार के सन्तोषवाक्य कह कर विदा किया । राजकुमार को आते देख सब के सब बड़े प्रसन्न हुए । पत्रलेखा ने वैशम्पायन के सामने गन्धर्वनगर के ऐश्वर्य का सविस्तर वर्णन किया और कादम्बरी और महाश्वेता के सौन्दर्य और स्वभाव की चर्चा में दिन व्यतीत हो गया । रात भी उसी चिन्ता में बीती ।

दूसरे दिन प्रातःकाल राजा मन्दिर में बैठे थे । उसी समय केयूरक ने आकर प्रणाम किया । राजकुमार ने उठ कर आलिङ्गन किया और फिर कादम्बरी और उसकी सखियों की कुशल पूछी । केयूरक ने उत्तर दिया कि आप जिसका समाचार पूछते हैं वह कुशल से हैं और यह लेप और पान इन्होंने आप के लिये भेजा है । अनुग्रह कर ग्रहण कीजिये । महाश्वेता ने कहा है कि “जिसने आप को नहीं देखा वही धन्य है और सुख से रहती है । जिस गन्धर्वनगर को आपने उत्सव और आनन्दमय देखा था उसमें अब धूल उड़ती है । मैंने सब कुछ त्याग कर चाहा कि आपको भूल जाऊँ पर मन पापी नहीं मानता । कादम्बरी आपका स्मरण कर कर रोती है । अतएव एक बेर और आकर दर्शन दीजिए । शेष नामक हार जिसे आप शय्या पर छोड़ गये पड़ा सूख रहा था इसलिए इस चामरधारिणी के हाथ भेजती हूँ ।” केयूरक के मुख से कादम्बरी और महाश्वेता का समाचार सुन राजकुमार को बड़ा आनन्द हुआ और उन्होंने हार, पान

और लेप हाथ में ले लिया । इसके अनन्तर केयूरक को लेकर वे अश्वशाला में गये और मार्ग में देखते जाते थे कि कोई पीछे आता तो नहीं । प्रतिहारियों ने उनका अभिप्राय समझ लोगों को हटा दिया और आप भी हटकर दूर खड़े रहे । चन्द्रापीड़ केवल केयूरक को लेकर अश्वशाला के भीतर गये और पूछने लगे कि “जब मैं वहाँ से चला आया कादम्बरी का वह दिन कैसे बीता ? महाश्वेता ने क्या कहा ? परिजनों में से किसने क्या कहा ? हमारी किसी ने कुछ चर्चा की वा नहीं ?”

केयूरक ने प्रति उत्तर दिया कि महाराज, सुनिए, जब आप गन्धर्वनगर से बाहर निकले, कादम्बरी अपनी सहेलियों को लेकर अटारी पर चढ़ आपका मार्ग देखने लगी । आप अदृश्य हो गये । तिसपर भी वह बहुत देर तक देखती रही । उसके अनन्तर वहाँ से उतर जहाँ आप रहते थे वहाँ गई और आपके स्नान, भोजन और शयन का स्थान देख देख आपका स्मरण करती थी । जब सन्ध्या होगई और महाश्वेता ने बहुत कहा तब थोड़ा सा कुछ आहार कर हाथ पर कपल रख वह बैठी आपकी चिन्ता करती और रोती थी । अन्त को जाकर शयनागार में जो कारागार समान जान पड़ता था अग्निमय पर्यङ्क पर पौढ़ो । रात भर तड़पती रही और भोर होते ही हमको बुला कर आपके पास भेजा ।

राजकुमारी की यह दशा सुन कर राजा को दर्प और विस्मय दोनों हुआ और फिर चित्त स्थिर न रह सका और वे वैशम्पायन को संना सौंप आप घोड़े पर चढ़ पत्रलेखा को ले गन्धर्वनगर

की ओर चले । कादम्बरी के द्वार पर पहुँच वे घोड़े से उतर पड़े और पूछा कि राजकुमारी कहाँ हैं । एक मनुष्य ने उत्तर दिया कि क्रोडापर्वत के समीप सरोवर के तीर हिमगृह में अनुष्ठान करती हैं । केयूरक को आगे कर उस स्थान की ओर वे चले तो क्या देखते हैं कि चारों ओर कदली आदि वृक्षों की हरियाली छा रही है । नाना प्रकार के फूल फूल रहे हैं और सुगन्धमय वायु चल रही है । सरोवरों में कमल फूले हैं और उन पर भ्रमर को भूम लग रही है । बीच बीच में हिमगृह बने हैं जिन में प्रवेश करते ही इंद्रियाँ शीतल हो जाती हैं । उन्हीं गृहों में एक स्थान पर नलिनी और शैवाल की शय्या बना कर कादम्बरी लेटी थी पर वहाँ भी उसके शरीर से चिनगारी छूटती थी । राजकुमार का देख वह शीघ्रतापूर्वक उठी और उसने यथाविहित आदर-सत्कार किया । जब सब बैठ गये केयूरक ने अङ्गुल्यादेश द्वारा कहा कि यह राजकुमार की तम्बूलवाहिनी और परमप्रोतिपात्र है । इसका नाम पत्रलेखा है । पत्रलेखा ने नम्रतापूर्वक कादम्बरी और महाश्वेता को प्रणाम किया और उन दोनों ने उसका हाथ पकड़ कर अपने समीप बैठाया और वे उससे सखी के समान बर्ताव करने लगीं ।

चन्द्रापीड़ ने कादम्बरी से पूछा कि हे प्रिये, यह तेरी क्या दशा होगई ? मुख मलिन, शरीर क्षीण और नेत्र छोटे छोटे हो गये । यदि मेरे द्वारा कोई क्लेश तुमको पहुँचा हो तो शीघ्र कहो; मैं धन, धाम, प्राण इत्यादि दूँगा और तुम्हारी आरोग्यता का उपाय करूँगा । यद्यपि कादम्बरी ने राजा का आशय भली भाँति

समझा परन्तु लज्जा के मारे उत्तर न दिया वरन वह हँसकर बोली कि मैं नहीं जानती कि यह क्या व्याधि है और इसकी औषध क्या है । अर्थात् इसी प्रकार अनेक प्रहसन-संलाप के अनन्तर राजा फिर अपनी छेना में चले गये और देखा कि उज्जैन नगरी से एक दूत आया है । वे उससे प्रीतिपूर्वक पिता, माता, बन्धु-बान्धव, प्रजा, परिजन इत्यादि लोगों का कुशल-समाचार पूछने लगे । उसने दो पत्रिकायें उनके हाथ में दीं । राजकुमार ने पहले पिता के पत्र को पढ़ा और फिर शुकनास के पत्र को । उसमें लिखा था कि “बहुत दिन हुए तुम घर से चले गये । हम लोगों का चित्त अत्यन्त चञ्चल हो रहा है । यदि पत्र पढ़ते ही यहाँ न आओगे तो हम लोगों को बड़ा दुःख होगा ।” वैशम्पायन के पास भी दो पत्र आये थे । उनमें भी यही लिखा था । राजकुमार का मन दुःखित हुआ । एक ओर पिता की आज्ञा दूसरी ओर प्रेम । यद्यपि कादम्बरी ने प्रकट में कुछ नहीं कहा पर उसके व्यवहार से बोध होता था कि वह अनुरागिणी है । जो हो, इस समय पिता की आज्ञा उल्लङ्घन करना उचित नहीं । यह मन में ठान उन्होंने समीप स्थित बलाहक के पुत्र मेघनाद से कहा कि तुम दो तीन दिन यहाँ ठहरो । केयूरक और पत्रलेखा आते होंगे । उनसे कहना कि मुझे घर जाने की शीघ्रता थी इससे कादम्बरी से भेंट नहीं कर सका । अब ऐसी मन में आती है कि यदि उनसे हमसे भेंट न हुई होती तो अच्छा था । अब केश के व्यतिरिक्त कुछ लाभ नहीं । जो हो, अब तो पिता की आज्ञा प्रतिपालन कर शरीर उज्जयिनी को चला, परन्तु मन गन्धर्वनगरी को नहीं छोड़ता । यह

कह उन्होंने वैशम्पायन से कहा कि मैं आगे चलता हूँ तुम रीतिपूर्वक सेना लेकर आओ ।

दूत से बात करते करते वे बहुत से घुड़सवारों के साथ चले जाते थे कि क्रमशः एक सघन वन में पहुँचे । क्या देखते हैं कि कहीं वृक्ष टूट कर गिरे हैं और मार्ग बंद हो गया है और कहीं वृक्षों की शाखा परस्पर ऐसी मिल गई हैं कि घुसना दुस्तर है । कहीं कहीं ऋँ मिलते हैं तो उनके पानी से दुर्गन्ध निकलती है । और उनके मुँह पर इतने लतापत्र एकत्रित हो रहे हैं कि यदि पानी लेने के लिए रस्सी डाली जाय तो उन्हीं में लिपट कर रह जाती है । बीच बीच में सूखी नदियाँ भयानक देख पड़ती हैं और उनको खोदने से जल निकलता है और पथिकों की पिपासा शान्त होती है । इस भयङ्कर वन को पार करते करते सन्ध्या होगई । दूर से देखा तो एक रक्तवर्ण पताका वायु में उड़ रही थी । राजा उसी ओर चले तो देखा कि चारों ओर खजूर के वृक्ष लगे हैं और उनके बीच में एक छोटा सा मन्दिर बना है । उसमें चण्डिका देवी की मूर्ति स्थापित है । आगे बिल्वपत्र पड़े हैं । सामने एक द्रविड़ बैठा कभी तो यक्ष-कन्या के वश करने के हेतु रुद्राक्षमाला लेकर वशीकरण मन्त्र पढ़ता है और कभी दुर्गा की स्तुति करता है । यद्यपि अवस्था उसकी आ पहुँची थी परन्तु वह अनेक प्रकार की कामना मन में कर रहा था । ईश्वर की महिमा अपरम्पार है । उसने किसी देश को अनुपम सौन्दर्य दिया और किसी को कुरूपता । देखा यही मनुष्य उस का प्रमाण है । आँख से देख नहीं पड़ता । कान से सुन नहीं सकता । पेट

इतना भारी जैसे कूँड़ा । खाय कितना ही पर कभी सन्तुष्ट न हो । जङ्गल में वृक्षों पर चढ़ने से बंदरों ने काध कर नाक काट ली थी और रीछों ने शरीर विदार डाला था । ज्योंही ये लोग वहाँ पहुँचे कि वह उनसे लड़ने लगा ।

चन्द्रापीड़ ने घोड़े से उतर भक्तिभावपूर्वक देवी की प्रदक्षिणा कर दण्डवत किया और द्रविड़ से उसकी जन्मभूमि, जाति, विद्या, पुत्र, विभव इत्यादि की भली भाँति जिज्ञासा की । उसने इन सब विषयों का ऐसा उत्तर दिया कि जिसके स्मरण करने से हँसी आती है । इसके अनन्तर सन्ध्या हुई और सब लोग घोड़ों को वृक्ष में बाँध कर सोये, पर राजकुमार रात भर गन्धर्वनगरी की चिन्ता करते रहे । प्रातःकाल उस उपासक को धन-दाता दे वे वहाँ से आगे बढ़े और कुछ दिनों के अनन्तर उज्जयिनी में पहुँचे । उनके आगमन का संदेश सुन नगर आनन्दमय हुआ और पिता की छाती दूनी हुई; उन्होंने पुत्र का भली भाँति आलिङ्गन किया । राजकुमार महल में गये और प्रथम माता से और फिर और और स्त्रियों से मिले । इसके अनन्तर मन्त्रा के घर जाकर उन्होंने सबका सुखी किया और घर में आ कर कुछ भोजन आदि करके दोपहर के अनन्तर वेश्यनागार में पैढ़ कर कादम्बरी की मोहिनी मूर्ति का ध्यान करने लगे । इस आशा से दिन काटने लगे कि जब पत्र-लेखा आवेगी तब प्रिया का संदेश मिलेगा ।

कुछ दिन के अनन्तर मेघनाद और पत्रलेखा आ पहुँचे । राजकुमार ने बड़े हर्ष से महाश्वेता और कादम्बरी की कुशल-क्षेम पूछी । उसने उत्तर दिया कि सब कुशल है, परन्तु राज-

कुमार को तृप्ति न हुई। उन्होंने कहा कि जब मैं वहाँ से चला आया तब तू कितने दिन वहाँ रही ? राजपुत्रों ने तेरे साथ कैसा वर्त्ताव किया ? क्या क्या बात चीत हुई ? विस्तारपूर्वक कहो । उसने कहा, सुनिए । आपके आने के पीछे मैं कई दिन तक वहाँ रही और राजकुमारी ने मेरा नित नया सत्कार किया । मैं वहाँ बड़े आनन्द से रही । वह भी मेरे बिना एक दण्ड भी नहीं रहती थी, जहाँ जाती मुझे अपने सङ्ग रखती थी । एक बेर प्रमदवन के चबूतरे पर चढ़ कर उसने चाहा कि मुझसे कुछ कहे फिर उदास-मन हो वह मेरा मुँह देखने लगी । उस समय उसके हृदय में न जाने क्या वेदना हुई कि रोमाञ्च खड़े हो गये और पसीना होने लगा वरन दोनों नयनों से भी आँसू की धारा चलने लगी । यद्यपि मैंने उससे कई बार पूछा परन्तु उसने कुछ कहा नहीं । जब मैंने बहुत हठ किया तब अञ्चल से आँसू पोछ बाली कि हे पत्रलेखा, मेरा मन किसी का विश्वास नहीं करता । पर जब से तू आई है तब से मेरे हृदय में बड़ा ढाढ़स बँधा है । यदि अपनी बात तुझसे न कहूँगी तो किससे कहूँगी । यदि अपने दुःख की भागी तुझे न करूँगी तो किसे करूँगी । चन्द्रा-पोड़ ने मुझे बड़ा दुःख दिया और संसार में निन्दित बना कर छोड़ दिया । स्त्री का स्वभाव बड़ा कोमल होता है, पर युवा लोग इसका विचार नहीं करते और बलपूर्वक आघात करते हैं, कुछ दया नहीं करते । अब धर्मपथ को त्याग निष्कलङ्क कुल में कलङ्क कैसे लगाऊँ ? लज्जा और विनय कैसे छोड़ूँ ? अब तो ईश्वर से यही प्रार्थना है कि दूसरे जन्म में भी तेरी सी सखी मुझको मिले ।

मैंने उसका यथार्थ अभिप्राय नहीं समझा और पूछा कि हे सखी, राजकुमार ने ऐसा कौन अपराध किया है ? तू क्यों उन को इतना तिरस्कार दे रही है ? यह सुन वह क्रोध कर के बोली कि वह दुष्ट नित्य प्रति रात को स्वप्न में मुझे जो दुःख देता है कि मैं उसका वर्णन नहीं कर सकती । कभी पत्रों लिख भेजता है, कभी दूती द्वारा नाना प्रकार का संदेश भेजता है और जब मुझको क्रोध आता है और आँख खोल कर देखती हूँ तो कुछ नहीं । फिर दाँत पीस कर रह जाती हूँ । किसको दोष दूँ और किसको क्या कहूँ । जब मैंने कहा कि बड़े आश्चर्य की बात है कि दोष किसी का और तिरस्कृत कोई हो । यह कुछ चन्द्रापीड़ का अपराध नहीं है । यह सब दुष्टता कामदेव की है ।

कादम्बरी ने कहा कि यदि कामदेव के रूप, गुण और स्वभाव का वर्णन करा तो मैं कहूँ कि कौन मुझको दुःख देता है । तब मैंने कहा कि वह तो अनङ्ग है । मैं उसका रूप क्या बताऊँ । उसकी अग्नि में न ज्वाला है और न धुआँ है । त्रिभुवन में ऐसा कौन है जो कामशर से वेधित न हुआ हो । इस पर उसने कहा कि—तो निस्सन्देह वही मुझको दुःख दे रहा है । अब क्या कर्तव्य है सो कहो । यह सुन मैं बोली कि कितनी स्त्रियों ने स्वेच्छापूर्वक विवाह किया है और किसी ने उनको निन्दित नहीं ठहराया तो तुम भी अपने इच्छानुसार कोई पति ढूँढ़ कर मदनदाह को शान्त करो और एक पत्रिका लिख कर हमको दे । मैं लेकर राजकुमार को दिखाऊँगी और तुम्हारा मनोरथ सिद्ध करूँगी । यह सुन वह बड़ी प्रसन्न हुई और कुछ देर ध्यान कर बोली कि कुमारियों को

इतना साहस कहाँ ? मैं क्या संदेश लिख भेजूँ ? यदि वे यहाँ आये भी तो क्या ? जब हिमगृह में हमसे उनसे भेंट हुई थी उन्होंने-ने बहुत कुछ कहा पर मेरे मुख से एक बात भी न निकली । अब मैं वही हूँ और मेरा मुख और अन्तःकरण भी वही है । इस बेर मिलने से मैं क्या लूट लूँगी । जो हो, अब जो सखियों को उचित हो सो करो । यह कह कर उसने मुझे भेजा है । सच पूछिए तो राजकुमारी को ऐसी अवस्था में छोड़ कर आप को आना उचित न था । इससे निर्दयता सूचित होती है । यह कर्म राजपुत्रों के नहीं हैं । यह कह वह चुप हो रही ।

यद्यपि राजकुमार बड़े धैर्यवान थे पर कादम्बरी का विरह-वृत्तान्त सुन कर बड़े अधीर हुए । उसी समय प्रतिहारी ने आकर कहा कि रानी ने सुना है कि पत्रलेखा आई है । इसलिए आपको और उसको बुलाया है । आपको देर से देखा नहीं इससे विकल हो रही हैं । चन्द्रापीड़ ने मन में कहा, क्या आपत्ति है । एक ओर माता-पिता का स्नेह, दूसरी ओर प्राणप्यारी का प्रेम । माता बिना देखे क्षण भर भी नहीं मानती और राजकुमारी का वह समाचार है कि ठहरने से हत्या होती है । अब क्या करें ? इसी भाँति चिन्ता करते करते वे रनिवास में गये । अब गन्धर्वनगर में कैसे पहुँचूँगा ? राजकुमार रात दिन इसी चिन्ता में गलने लगे । कुछ दिन के अनन्तर एक दिन सन्ध्या को शिप्रा नदी के तीर पर वे विहार कर रहे थे कि दूर से बहुत से घुड़चढ़े आते हुए देख पड़े । निकट आने पर जान पड़ा कि आगे केयूरक और उसके पीछे बहुत से गन्धर्व चले आते हैं । राजपुत्र केयूरक को देख

कर बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने उसे कण्ठ में लगा लिया और आदरपूर्वक कुशल चेम पूछी । इसके अनन्तर वहाँ से वे घर आये और अकेले में कैयूरक से कादम्बरी का समाचार पूछने लगे । उसने उत्तर दिया कि मुझसे उसने कुछ नहीं कहा । मैं मेघनाद को पत्रलेखा के समीप छोड़ लौट गया और जा कर मैंने यह कह दिया कि राजकुमार उज्जयिनी गये । इतनी बात सुन महाश्वेता ने ऊपर देखा और ठण्ढी साँस भर कर कहा कि हाँ अच्छा हुआ । फिर वह उठ कर अपने आश्रम में चली गई । कादम्बरी यह सुन कर ठक से रह गई । थोड़े समय के अनन्तर आँख खोल कर वह मदलेखा से कहने लगी कि चन्द्रापीड़ ने जैसा कर्म किया है मैं जानती हूँ कि कोई दूसरा कभी न करेगा । फिर वह पलङ्ग पर लेट रही । तब से किसी से बोलती नहीं और रात दिन रोया करती है । मैं उसकी यह दशा देख घबराया और बिना कहे आपके पास दौड़ा आया हूँ ।

प्राणप्यारी का यह वृत्तान्त सुन राजा को मूर्छा आई और वे भूमि पर गिर पड़े । बड़ी देर के अनन्तर जब लोगों ने बहुत पानी इत्यादि छिड़का और बोजन किया तब फिर चेतन हुए और दार्ध्र्य श्वास लेकर उन्होंने कहा कि मैं पहले नहीं जानता था कि कादम्बरी मुझे इतना चाहती है । अब मैं क्या करूँ ? कैसे उसकी प्राणरक्षा हो ? जान पड़ता है कि विधाता मुझको कलङ्कित करेगा । यह सब उसी के कर्म हैं, नहीं तो किन्नर-समूह के पीछे क्यों जाता ? आच्छोद सरोवर के समीप क्यों जाता ? महाश्वेता से भेंट क्यों होती ? गन्धर्वनगर में जाना क्यों होता और क्यों कादम्बरी से प्रेम

बढ़ता ? यह सब विधाता का पाखण्ड है। इसमें कुछ सन्देह नहीं। इतने में सन्ध्या होगई। रात को उन्होंने केयूरक से पूछा कि हमारे जाने तक कादम्बरी जीती रहेगी कि नहीं ? उसका मुख-चन्द्र क्या फिर देखने को मिलेगा ? उसने कहा—राजकुमार, इस संसार में आशा जीवनमूरि है, आशा ही की लाठी पकड़ कर लोग इस संसाररूपी अंधेरी रात में चलते हैं। आप अधोर न हूजिए। धीर धारण करके चलने का उपाय कीजिए। राजा ने उसको तो सोने की आज्ञा दी और आप सोचने लगे कि यदि माता-पिता से न कहें और चले जायँ तो बड़ा अनर्थ है। यह राज्यभार क्या मिला है मुझको दुःखभार मिला है। यदि नित्यप्रति प्रबन्ध न हो तो अन्धेर होने लगे और उनसे बिना कहे जा कैसे सकते हैं। कहीं कर जाना उचित है परन्तु क्या कहूँगा कि राजकुमारी मुझे देख मोहित हुई है और मैं भी उसको देखे बिना रह नहीं सकता हूँ और केयूरक मेरे बुलाने के लिए आया है ! उनके सामने ऐसी निर्लज्ज बात कैसे कहूँगा ? इतने दिन में तो विदेश से आया हूँ अब फिर क्या चलूँ। कोई सम्मति देनेवाला भी नहीं है। प्रिय मित्र वैशम्पायन भी समीप नहीं हैं। इसी प्रकार सोच विचार में रात बीत गई। प्रातःकाल उठ कर वे बाहर गये और सुना कि सेना दशपुरी तक पहुँच गई। यह समाचार सुन परम आह्लादित हो केयूरक से कहने लगे कि प्रिय मित्र वैशम्पायन आ पहुँचे। अब कुछ चिन्ता नहीं। केयूरक ने कहा—महाराज, जैसे मेघ के देखने से वृष्टि का अनुमान होता है और पूर्व दिशा में प्रकाश देखने से सूर्योदय का अनुमान होता है उसी प्रकार

इस शुभ समाचार के सुनने से आपके गन्धर्वनगर जाने की सूचना होती है। अब राजकुमारी से आप की अवश्य भेंट होगी। इसमें सन्देह नहीं। क्या कभी किसी ने चन्द्रमा को प्रकाशरहित भी देखा है? किन्तु वैशम्पायन के आने और आप से मिलने से बोध होता है कि आपके जाने में विलम्ब होगा। राजकुमारी की अवस्था का वर्णन तो मैं पूर्व ही कर चुका हूँ। अब यदि आज्ञा हो तो मैं आगे चल कर आपके आगमन का संवाद देकर उसको शान्त करूँ।

केयूरक की बात सुन कर चन्द्रापीड बड़े सन्तुष्ट हुए। वे बोले कि तूने तो अच्छी युक्ति सोची। तेरी सी बुद्धि मैं किसी की नहीं देखता। अच्छा तो तुम आगे चलो और सङ्ग में पत्रलेखा को भी लेते चलो और मेघनाद को बुला कर उन्होंने कहा कि पहले मैं जहाँ तुम्हें छोड़ आया था, केयूरक और पत्रलेखा को लेकर वहीं चलो। मैंने सुना है कि वैशम्पायन आते हैं। उनसे मिल कर मैं भी आता हूँ। मेघनाद आज्ञा पा प्रस्थान की तैयारी करने लगा। राजकुमार ने केयूरक को छाती से लगाया और एक बहुमूल्य कर्णाभरण पारितोषिक दे सजलनयन होकर कहा कि तू प्राणेश्वरी के यहाँ से कोई संदेश तो लाया न था कि मैं उसके प्रति-उत्तर में कुछ कहता। परन्तु पत्रलेखा सम्पूर्ण समाचार जानती है। वह कहेगी और उसकी ओर दृष्टिपात करके कहा कि तू प्राणेश्वरी से कह देना कि “मैं घर आने के समय उनसे मिला नहीं, यह बड़ा अपराध हुआ है। आपने जैसा व्यवहार हमारे साथ किया था, मैंने उसके अनुरूप कर्म न किया। अब आप अपनी ओर देख कर क्षमा करें।”

पत्रलेखा, केयूरक और मेघनाद को विदा करके राजकुमार का चित्त वैशम्पायन से मिलने की चेष्टा करने लगा । परन्तु उनके आने तक वे ठहर न सके और मन में वहीं जाकर मिलने का सङ्कल्प कर महाराज से आज्ञा लेने को गये । राजा ने प्रणत पुत्र को आलिङ्गन करके शरीर पर हाथ फेरा और मन्त्री को पुकार कर कहा कि देखो चन्द्रापोड़ को काम का उद्वेग हुआ है । अब मुझे पुत्रवधू के मुखचन्द्र देखने की लालसा होती है । मन्त्री ने कहा कि महाराज, यह तो बड़ी उत्तम बात है । राजकुमार सम्पूर्ण विद्या सीख चुके और अच्छी भाँति राजकाज करते हैं । अब सबकी यही मनःकामना है कि नववधू के आगमन से नगर प्रकाशित हो । राजकुमार ने मन में कहा कि देखो कैसा संयोग है कि जिस समय राजकुमारी के समागम की धूम हो रही है उसी समय पिता ने विवाह की चेष्टा की । इस समय यदि वैशम्पायन आ जायें तो फिर प्राणप्यारी के मिलने में कोई सन्देह न रहे । यह सोच उन्होंने पिता से स्कन्धावार में जाने की आज्ञा माँगी । राजा ने सम्मति दी । राजकुमार का जी वैशम्पायन से मिलने को इतना चाहता था कि उस रात को उन्हें नौद न पड़ी । थोड़ी रात रहते कूच का शङ्ख बजा और सब लोग निकल खड़े हुए । चाँदनी छिटकी थी । मार्ग चलने में कुछ क्लेश नहीं था । राजकुमार शीघ्रतापूर्वक आगे आगे चले और भोर होते होते बहुत दूर निकल गये और डेरे के स्थान के समीप पहुँच गये । अन्धे को आँख मिलने से जैसा आनन्द होता है, स्कन्धावार के देखने से राजकुमार वैसे ही प्रसन्न हुए और मन में सोचने लगे कि एकाएक पहुँच कर बन्ध के मन में विस्मय

उत्पन्न कर दूंगा । डेरे में पहुँचे तो क्या देखते हैं कि बहुत सी स्त्रियाँ एक स्थान पर बैठी बातें कर रही हैं । उनसे उन्होंने पूछा कि वैशम्पायन कहाँ हैं ? वे इन्हें जानती तो थीं नहीं, अकृत्रिम भाव से बोलों कि क्या पूछते हो ? यहाँ वैशम्पायन कहाँ ? राजकुमार क्रोधित हो कर बोले, क्या बकती हो । इसके अनन्तर अनेक सैनिक प्रधान पुरुष आ कर आदरपूर्वक प्रणाम करने लगे । चन्द्रापीड़ ने पूछा कि वैशम्पायन कहाँ हैं ? उन सब ने विनयवचन से उत्तर दिया—महाराज, आप इस वृत्त की शीतल छाया में विश्राम करें तो हम सब सम्पूर्ण वृत्तान्त वर्णन करें । उनकी यह बात सुन कर युवराज के मन में और भी शङ्का हुई और वे कहने लगे कि क्या मेरे सेना से बाहर जाने पर कोई युद्ध हुआ ? क्या आपत्ति हुई, शीघ्र कहो । उन सब ने कान पर हाथ रख कर कहा कि नहीं नहीं, आप और किसी बात की चिन्ता न करें । राजकुमार ने पहले तो समझा था कि वैशम्पायन जीवित नहीं हैं परन्तु अब वह शङ्का दूर हुई और चित्त स्थिर हुआ और फिर उन्होंने पूछा कि बोलो वैशम्पायन कहाँ हैं ? क्यों नहीं आये ? उन्होंने कहा—महाराज, सुनिए । आपने वैशम्पायन को डेरे के साथ आने की आज्ञा देकर प्रस्थान किया । उन्होंने यहाँ सुना कि आच्छोद सरोवर एक महापुनीत तीर्थस्थान है । लोग दूर दूर से अनेक क्लेश सह कर दर्शन को आते हैं और हम लोग भाग्यबल से इतने समीप आ गये हैं तो बिना स्नान किये जाना उचित नहीं है । अब तो शशाङ्कशेखर का दर्शन करके कूच होगा । यह कह कर वे उसी सरोवर की ओर गये । वहाँ की शोभा देख

कर मेहित हो इधर उधर घूम रहे थे कि एक सुन्दर लतामण्डप देख पड़ा । उसके भीतर एक शिवा पड़ो थो । बहुत दिन के बाद परम प्रीतिपात्र मित्र को देख कर जैसा प्रेम उमगता है, लतामण्डप को देख कर वैशम्पायन के मन में वैसा ही प्रेम उत्पन्न हुआ और वे एकटक उसी ओर देखने लगे । कुछ काल के अनन्तर पृथ्वी पर बैठ कर बायें हाथ पर बायाँ गाल रख कर वे चिन्ता करने लगे । उस समय की उनकी अवस्था देखने से यही जान पड़ता था जैसे कोई किसी भूली हुई वस्तु का स्मरण कर रहा है । उनकी यह दशा देख कर हम लोगों ने अपने मन में सोचा कि जान पड़ता है कि सुन्दर लतामण्डप और मनोहर सरोवर ने इनके चित्त को मोह लिया । युवा अवस्था भी कैसा बुरा समय है । इसमें लज्जा और धीर कुछ नहीं रहता । जो हो, अब इस स्थान पर बहुत काल तक ठहरना उचित नहीं है । शास्त्रकार लोग लिखते हैं कि ऐसे समय को टाल देना उचित है । यह मन में दृढ़ कर हम लोगों ने कहा कि महाराज, सरोवर-दर्शन तो हो चुका । अब उठिए चलें, देर होती है । सेना के लोग सब प्रस्तुत आपका मार्ग देखते होंगे । अब विलम्ब उचित नहीं । उन्होंने हमारी बात का कुछ उत्तर नहीं दिया । वरन वे काठ के पुतले की भाँति उसी मण्डप की ओर देखते रहे । जब हम लोगों ने बहुत कहा तो क्रोधित होकर बोले कि हम इस स्थान से न जायेंगे; जाओ । हम लोगों को उनकी ये बातें समझ में न आईं और फिर हम लोगों ने कहा कि चन्द्रापोड़ आपको सेना सौंप कर घर गये थे और कह गये कि स्कन्धावार के साथ

आना । इसलिए आपको यहाँ रह जाना उचित नहीं । आप ऐसे विरक्त क्यों हो गये ? यदि हम लोग आपको ऐसे निर्जन स्थान में छोड़ कर चले जायें तो युवराज क्या कहेंगे ? आज आपको क्या होगया ? यदि हम लोगों से कोई अपराध हो गया हो तो क्षमा कीजिए । उन्होंने कहा कि तुम लोग क्यों हमें समझाते हो । हम बिना चन्द्रापीड़ के देखे एक दण्ड भी नहीं रह सकते । इसके सिवाय शीघ्र जाने का कोई कारण नहीं है परन्तु इस स्थान में आ कर और इस मण्डप को देख कर चित्त शिथिल हो गया और इन्द्रियाँ थकी जाती हैं । जाने की अब सामर्थ्य नहीं है । यदि तुम लोग बल से मुझको ले चलो तो पहुँचते पहुँचते मेरा प्राण निकल जायगा । अब मेरे ले जाने में परिश्रम करना व्यर्थ है । तुम लोग सब घर जाओ और चन्द्रापीड़ के मुखचन्द्र को देख कर सुखी हो । अब हमको उस मूर्ति के देखने की आशा नहीं है । मैंने ऐसा कौन पुण्य कर्म किया है कि सुख से कालक्षेप करने की सम्भावना करूँ ।

हम लोगों ने पूछा कि यह एकाएकी आपको क्या होगया ? उन्होंने उत्तर दिया कि तुम सत्य करके जानना, मैं इसका कारण नहीं जानता । मैं तुम लोगों के साथ ही यहाँ आया और सबके सामने यह लतामण्डप मुझे देख पड़ा । अब यह नहीं जान पड़ता कि चित्त क्यों इतना चञ्चल हो गया है । यह कह कर वे वहाँ से उठे और सरोवर के तीर मण्डप के चारों ओर वृक्षों के नीचे फिरने लगे, जैसे कोई खोई हुई वस्तु को ढूँढ़ता हो । हम लोगों ने भोजन के लिए कहा तो कहने लगे कि हमारा

प्राण अपने प्राण की अपेक्षा चन्द्रापीड़ को विशेष प्रिय है । अतएव इसकी रक्षा अवश्य करनी चाहिए । यह कह कर सरोवर में स्नान करके जो कुछ फल फूल मिला उसे उन्होंने भक्ष्य किया । इस प्रकार तीन दिन बीते । हम लोग नित समझाते थे पर उनका चित्त स्थिर नहीं होता था, तब निराश हो कई सिपाही वहाँ उनकी रक्षा के लिए नियत करके चले आते हैं । यह जान कर कि आपको छेश होगा, हम लोगों ने पहले यह समाचार नहीं भेजा ।

वैशम्पायन का यह आश्चर्य-समाचार सुन कर राजकुमार को बड़ा विस्मय हुआ और वे मन में सोचने लगे कि क्या ऐसी यह क्या हो गया ? हमसे तो कभी कोई अपराध भी नहीं हुआ, अभी कोई दुर्वचन भी हमने नहीं कहा । और किसी ने कुछ कहा या किया हो सो मन में जमता नहीं । तृतीय अवस्था का यह समय नहीं है । देव, पितर और ऋषि ऋण से अभी उन्मत्त नहीं हुए । ऐसे बुद्धिहीन भी नहीं हैं कि आगे पीछे का कुछ विचार न करें और अन्याय पर कमर बांधें । यह तर्कना करते करते वे एक डेरे में जाकर एक शय्या पर पौढ़ गये और मन में कल्पना करने लगे कि यदि घर न जायँ, इसी ओर से उनके पास चले जायँ तो माता, पिता, शुकनास और मनोरमा यह सुन कर विस्मित हो जायँगे । अतएव घर चल कर माता पिता की आज्ञा ले और शुकनास और मनोरमा को सन्तोष दे प्रियवर के समीप पहुँचना उचित है । जो हो, बन्धु ने अन्यायकर्म करके भी मेरा उपकार ही किया । मेरे मनोरथ सिद्ध होने का कैसा योग बन

पड़ा है । इसी बहाने प्रियतमा का दर्शन होगा । अर्थात् मित्र के विरह को भी एक प्रकार से सुखमूल जान कर वे बहुत व्याकुल नहीं हुए और 'आप चल कर मित्र को लेही आऊँगा' इस दृढ़ विश्वास ने हृदय को कातर भी नहीं होने दिया ।

इसके अनन्तर वे भोजनादि करके डेरे के बाहर निकले और उन्होंने देखा कि प्रचण्ड मार्तण्ड अपनी सम्पूर्ण कला से तप रहा है । आकाश की ओर देखा नहीं जाता । दुपहरी कलकला रही है और चारों ओर से आग बरस रही है । सन्नाटा छा रहा है । कहीं किसी का शब्द सुन नहीं पड़ता । केवल चातक का स्वर कभी कभी कान में समझ पड़ता है । भैंस और भैंसा डबरी डबरी में मड़िया ले रहे हैं । पिपासा से व्याकुल हरिण मृगतृष्णा के भ्रम में इधर उधर घूम रहे हैं । कुत्ते जीभ निकाल कर हाँफ रहे हैं और लू चल रही है । शरीर से पसीना निकला जाता है । राजकुमार अपने डेरे को भलीभाँति शीतल करा के विश्राम करने लगे । इस ऋतु में सन्ध्या समय अति रमणीक होता है । सूर्य का तेज मन्द हो जाता है और मन्द मन्द समीर चलने लगती है । इस समय सब लोग वायुसेवन के लिए बाहर निकल जाते हैं और मैदान की सैर करते हैं । राजकुमार भी डेरे के बाहर निकल कर गगनमण्डल की शोभा देखने लगे । जब चन्द्रमा उदय हुए, कूच का शङ्ख बजा और सब सेना जो उज्जैनदर्शन की लालसा से उतावली हो रही थी, भटपट सज सजा कर चल बसी । भोर होते होते सब उज्जयिनी पहुँच गए । वैशम्पायन का समाचार नगर में पहले ही पहुँच गया था ।

पुरजन लोग राजकुमार को देखते ही हाय मार कर रोने लगे । युवराज ने अपने मन में बिचारा कि जब पुरजनों की यह दशा है तब शुकनास और मनोरमा का क्या हाल होगा ?

थोड़ी देर के अनन्तर वे राजद्वार पर पहुँचे और घाड़े से उतरते ही उन्होंने सुना कि राजा मन्दिर में नहीं हैं, रानी समेत शुकनास के घर गये हैं । वे आप भी उसी ओर चले । जिसको देखते थे सब रोना मुँह किये नाना प्रकार के विलाप कर कर कह रहे हैं कि “बेटा, ऐसे निर्जन और भयानक जङ्गल में तुम कैसे जीते हो । जब भूख लगती होगी तब क्या करते होगे । प्यास लगने पर पानी कौन पिलाता है ? यदि तुम्हारे मन में यही था कि वनवास करें तो हम लोगों को भी क्यों नहीं ले चले । बालकपन में तो तुम्हारा ऐसा स्वभाव न था, न जाने अब क्या हो गया ? इसका कारण नहीं जान पड़ता । तुम्हारा मुखकमल देखे बिना अब जीवन व्यर्थ है ।” राजकुमार महाराज और शुकनास को प्रणाम करके अधोमुख एक कोने में बैठ गये । राजा ने कहा—हे बेटा चन्द्रापोड़ ! तुम में और वैशम्पायन में बड़ा प्रेम था । यह हम सब जानते हैं परन्तु इस समय हमें तुम्हारी ओर से कुछ सन्देह जान पड़ता है । राजा की बात सम्पूर्ण नहीं होने पाई थी कि शुकनास ने कहा—धर्मावतार ! यदि चन्द्रमा में अग्नि, अमृत में मीचु और हिम में दाहशक्ति उत्पन्न हो तो हो परन्तु चन्द्रापोड़ किसी प्रकार दोषी नहीं हो सकते । दूसरे का अपराध दूसरे के सिर डालना महापाप है । जिसने माता पिता की बात का ध्यान न किया, राजा की न सुनी,

मित्रता को कुछ न समझा चन्द्रापीड़ ऐसे मातृद्रोही, पितृघातो, कृतघ्न और दुराचारी का क्या कर सकते हैं। उसने यह भी नहीं सोचा कि मैं अपने माता पिता का एकाकी पुत्र हूँ। मेरे बिना देखे वे अशन पान नहीं कर सकते। हम जानते हैं उसने केवल हम लोगों को दुख देने के लिए जन्म ग्रहण किया। रोते रोते शुकनास का ओठ फूल आया और गला बैठ गया। राजा ने उनकी यह अवस्था देख कर कहा कि हे मन्त्री, इस रोने पोटने से कुछ लाभ नहीं है। इस संसार में ऐसा कोई नहीं है जिसका यौवन निर्विकार और निर्दोष निकल जाय। यह बड़ा टेढ़ा समय है। इसमें पहुँचने से गुरुजनों का बालक-पन का स्नेह छूट जाता है। वचःस्थल के साथ वाञ्छा फैलती है। दोनों भुजाओं के सङ्ग बुद्धि बढ़ती है और मध्यभाग के सङ्ग विनय क्षीण होता है अर्थात् बिना कारण विकार उत्पन्न होता है। वैशम्पायन का कुछ दोष नहीं, यह केवल समय का दोष है। क्यों व्यर्थ उस बेचारे को अपराधी बनाते हो। पहले उसके लाने का उपाय करना उचित है फिर उसके मुँह से सब बातें सुन कर जैसा कर्तव्य होगा किया जायगा। शुकनास ने कहा— महाराज ! आप क्या कहते हैं। रात दिन जो सङ्ग में रहता था, जिसके साथ विद्याध्ययन किया और जिसके साथ इतनी मित्रता थी यदि उसकी बात न सुनी तो वह किसकी सुनेगा।

चन्द्रापीड़ को इन बातों से बड़ा क्रोध हुआ और वे बोले कि हे पिता, यह सब मेरा ही दोष है। यदि आज्ञा हो तो मैं स्वयम् जाकर आच्छोद सरोवर में अपने पाप का प्रायश्चित्त करूँ

और वैशम्पायन को लिवा लाऊँ । यह कह माता, पिता, शुक्र-नास और मनोरमा से विदा हो इन्द्रायुध पर चढ़ राजकुमार बन्धु की टोह में चले । उस दिन शिप्रा नदी के तीर पर टिक कर दूसरे दिन सूर्योदय के पहले उन्होंने लोगों को चलने की आज्ञा दी । वे आप आगे आगे चले और मार्ग में अनेक प्रकार के मनोरथ करते जाते थे । चुपचाप मित्र के पास पहुँच कर और गले में लिपट कर कहूँगा कि हे मित्र ! कहाँ भागे जाते हो और फिर महाश्वेता के आश्रम में जाऊँगा । वह मुझे देख कर बड़ी प्रसन्न होगी । सेना को वहीं छोड़ कर हेमकूट में जाकर प्राणप्यारी का मुखकमल देख कर नयनयुगल सफल करूँगा और फिर उसका पाणिग्रहण करके जीवन और आत्मा दोनों का सुख लूँगा और उसकी सम्मति से मदलेखा के साथ मित्र का गँठबन्धन करके उनको वैराग्य से मुक्त करूँगा । इस प्रकार मन के लड्डू खाते खाते भूख, प्यास और मार्ग के श्रम को भूल वे रात दिन चले जाते थे ।

वर्षाकाल का समय आ पहुँचा । नीले बादल से आकाश छिप गया । सूर्य का दर्शन दुर्लभ हुआ । चारों ओर अन्धकार छा गया । रात दिन में कुछ भेद न रहा । मेघ की गर्ज और बिजली की चमक से हृदय कम्पायमान होने लगा । अति वर्षा के कारण नदियाँ उमड़ उमड़ कर दोनों करारों को तोड़ती हुई बड़े वेग से बहने लगीं । ताल, तलैया, नाले, खोरे सब परिपूर्ण हो गये । चारों ओर पानी पानी हो जाने से मार्ग लोप हो गया । मोर, मोरिनी प्रसन्नतापूर्वक नाच करने लगे और कदम्ब, मालती, केतकी

और कुटज आदि नाना प्रकार के सुगन्धमय पुष्पों का स्पर्श कर मधुर मधुर वायु शरीर में लग कर आनन्द देती थी । बीच में कोकिल और दादुर का शब्द भरने की भनकार से मिलकर एक अद्भुत प्रकार का आनन्द उत्पादन करता था । चन्द्रमा का प्रकाश जाता रहा । नक्षत्रों ने मारे भय के मुँह छिपा लिया । अर्थात् इस प्रकार वर्षाकाल ने आकर चन्द्रापीड़ की राह काटी और वह इन्द्रधनुष द्वारा बूँदों के तीर से विरही के हृदय को बाँधने लगा । यह सामान देख कर चन्द्रापीड़ का उत्साह मन्द पड़ा और वह कहने लगा कि यह क्या हुआ ? कहाँ प्रसन्नचित्त होकर हम अपने मित्र और प्रियतमा की भेंट को जाते हैं और कहाँ यह विघ्न ! यह आपत्ति कहाँ से आई । नहीं नहीं ऐसा जान पड़ता है कि यह मेघरूपी छत्र द्वारा सूर्योत्ताप को निवारण करके और दामिनी की दमक द्वारा मार्ग दीप्तमान करके मेरी सेवा करने को आया है । यही यात्रा का उत्तम समय है । यह सोच उसने यात्रा आरम्भ की ।

चलते चलते उसने मार्ग में देखा कि मेघनाद आता है और उससे पूछा—“हे मेघनाद ! तूने आच्छाद सरोवर पर वैशम्पायन को देखा था ? तूने उनसे पूछा था कि वहाँ क्या करते हैं ? उन्होंने क्या उत्तर दिया ? उनकी क्या इच्छा जान पड़ो ? घर फिरेंगे कि नहीं ? हमारे गन्धर्वनगर जाने का समाचार सुन कर उन्होंने क्या कहा ? तू क्या समझता है ? हमारे पहुँचते पहुँचते वे वहाँ रहेंगे कि नहीं ?” मेघनाद ने विनयपूर्वक कहा—युवराज ! मैंने आते समय किसी से यह नहीं सुना कि वैशम्पायन घर नहीं जाते

और वहीं रहने की इच्छा करते हैं । उनसे मुझसे भेंट भी नहीं हुई । मैं आच्छोद सरोवर तक गया भी नहीं । मार्ग में पत्रलेखा और केयूरक ने कहा कि हे मेघनाद ! वर्षाकाल आया । अब तुम जाओ और ऐसे दुर्घट समय में अकेले कहीं न ठहरना । यह कह उन्होंने मुझे विदा किया । राजकुमार ने मेघनाद को भी सङ्ग में ले लिया । कुछ दिन के अनन्तर वे आच्छोद सरोवर के निकट पहुँचे । जिस स्थान पर फूले कमल, सुन्दर सुन्दर घाट और लताकुञ्ज देख कर उन्होंने चित्त प्रसन्न किया था उसी स्थान पर विषण्ण-वदन मित्र की वे चिन्ता करने लगे और वृक्षकुञ्ज, लताकुञ्ज और करारों में घुस घुस कर ढूँढ़ने लगे परन्तु उसका पता नहीं लगता था । तब निराश होकर वे मन में सोचने लगे कि जान पड़ता है पत्रलेखा के मुँह से मेरे आने का संवाद सुन कर मित्र यहाँ से चला गया । नहीं तो यहाँ कोई चिह्न तो होता । अब कहाँ जाऊँ, कहाँ उसका पता लगेगा ? जिस आशा से मैं यहाँ तक आया वह जाती रही । शरीर शिथिल हो गया और हाथ पाँव फूल गये और चारों ओर अन्धकार दीख पड़ता है ।

आशा भी एक कैसी वस्तु है ! जब चन्द्रापीड़ ने वैशम्पायन को सरोवर के तीर पर न पाया, तब कहा कि चलो एक बेर महाश्वेता का आश्रम देख आवें । सम्भव है कि वहाँ से कुछ टोह लगे और घोड़े पर चढ़ वे उसी ओर चल दिये । आते समय मन में सोचा था कि महाश्वेता मुझे देख कर अति प्रसन्न होगी और मैं भी उसके साथ आह्लादित हूँगा परन्तु विधाता कैसा छली है । होनहार कैसी प्रबल होती है । मनुष्य कैसे अन्धे होते हैं । परन्तु

उनका मनोरथ कैसा प्रबल है । चन्द्रापोड़ वियोगशोकशोकित बन्धु को ढूँढ़ते ढूँढ़ते वहाँ जाकर देखते हैं कि वह एक शिला पर बैठी मुँह नीचा किये रो रही है, तरलिका विषण्णमुख उसको पकड़े है । उसकी यह अवस्था देख कर राजकुमार बहुत डरे और मन में कहने लगे कि जान पड़ता है कादम्बरी को कोई छेश हुआ, नहीं तो हमारे आने का समाचार सुन कर यह अवश्य प्रसन्नचित्त रहती । बन्धु के वियोग से दुःखी तो थे ही, इस अचिन्तित आपत्ति से वे और भी दुःखी हुए और शरीर पराक्रमशून्य हो गया । वे मलिनमन महाश्वेता के निकट गये और शिला के एक कोने पर बैठ कर तरलिका से महाश्वेता के शोक का वृत्तान्त पूछने लगे ।

तरलिका कुछ बेली नहीं वरन महाश्वेता का मुख देखती रही । महाश्वेता ने अञ्चल से मुँह पोंछ कर धीरे से कहा—महाराज, जिस पापिन ने उस समय आपको एक दारुण शाक-वृत्तान्त सुनाया था, वह अबकी बार एक और प्रकार का इतिहास ले बैठी है । केयूरक के मुख से आपके गन्धर्वनगर से आने का संवाद सुन मैं काठ होगई । चित्ररथ का मनोरथ, मदिरा को वाञ्छा और मेरा अभीष्ट सिद्ध न हुआ—इससे चित्त में और भी वैराग्य उत्पन्न हुआ । कादम्बरी के स्नेहजाल को काट कर अपने घर चली आई । एक समय अपने आश्रम में बैठी थी कि मैंने आपके समान एक ब्राह्मण ने युवा पुत्र को दूर से आते देखा । उनका चित्त ऐसा व्यग्र था जैसे कोई किसी खोई हुई वस्तु को ढूँढ़ता फिरता हो । क्रमशः मेरे समीप आकर वे परिचित की भाँति बहुत काल तक मेरी ओर देखते रहे और कहने लगे कि हे

सुन्दरी, इस काल में वयस और रूप के अनुसार काम करने से कोई किसी को दोषी नहीं ठहरा सकता परन्तु तुम उसके विपरीत करती हो । यह तुम्हारी नवीन अवस्था, कोमल शरीर और कुन्द के फूल समान अवयव तपस्या योग्य नहीं हैं । कमल-वन में तुषार पड़ने से जो फल होता है तुम्हारे पक्ष में तपस्या वैसी ही है । यदि तुम्हारी सी सुन्दर सुन्दर नवयौवना बालाये तपस्या करने लगें तो कामदेव का पुष्पबाण क्या भ्रूख मारेगा ? चन्दा की चाँदनी, कोकिल का कुहूरव, वसन्त ऋतु की शोभा और वर्षा का प्रभाव फिर निष्फल है ।

पुण्डरीक की अकथनीय अवस्था के उपरान्त मैं सदा निरुत्साह रहती थी; परन्तु उस कुमार की बातों ने शरीर में चिनगी सी लगा दी । उनकी कथा पूर्ण न होने पाई कि मैं विरक्त होकर वहाँ से उठ गई और तरलिका को पुकार कर कहने लगी कि इसकी असङ्गत कथा और टेढ़ी चितवन से जान पड़ता है कि इसके मन में पाप है । इसको निषेध कर दे कि फिर यहाँ न आवे । यदि आवेगा तो भला न होगा । तरलिका ने तिउरी चढ़ा और नाक भौंह सिकोड़ कर कहा कि तुम यहाँ से जाओ और फिर यहाँ न आना । वह दुष्ट उस दिन तो फिर गया परन्तु उसने अपना सङ्कल्प नहीं छोड़ा । एक दिन रात को चाँदनी में तरलिका एक शिला पर अचेत सो रही थी और मैं भी गरमी के कारण गुफा के बाहर एक शिला पर लेटी चन्द्रमा की ओर देख रही थी और ठण्ठी ठण्ठी वायु चल रही थी कि एकाएकी पुण्डरीक का ध्यान आया । उनका गुण स्मरण करके मैंने मन में कहा कि देखो मैं कैसी अभगिन हूँ

कि आकाशवाणी भी भूठी हो गई। अब प्राणप्यारे से मिलने का कोई उपाय नहीं दीख पड़ता। जब से वे गये फिर बहुते नहीं। मैं इस प्रकार चिन्ता कर रही थी कि दूर से मनुष्य के चलने की आहट जान पड़ी। आँख फेर कर देखा तो वही ब्राह्मणकुमार दोनों हाथ फैलाये उन्मत्त की भाँति दौड़ा चला आता है। उसकी वह अवस्था देख कर मन में भय उत्पन्न हुआ और मैं कहने लगी कि यदि वह बलात् आ कर अङ्क में लगा ले तो क्या करूँगी ? प्राण त्याग दूँगी। अब प्राणेश्वर के मिलने की आशा नष्ट हुई। इतने में उसने निकट आ कर कहा—हे मृगनयनी ! देख यह कामदेव का प्रधान सहकारी चन्द्रमा मेरे मारने को चला आता है। अब मैं तेरी शरण आया हूँ। मेरा प्राण बचा ले। उसकी यह बात सुन कर मुझे क्रोध आया और मेरा शरीर काँपने लगा। नाक से अग्निमय श्वास निकलने लगा। मैंने चिल्ला कर कहा—“रे दुष्ट, अभी तक तू जीता है ? तेरी रसना गल के गिर नहीं गई ? तेरा शरीर खण्ड खण्ड नहीं हो गया ? जान पड़ता है कि तेरा शरीर शुभाशुभकर्म-साक्षी पञ्चतत्त्व से नहीं बना है। नहीं तो आग से जल कर पानी में सड़ कर तथा मिट्टी में गल कर रसातल में मिल जाता और अणु उसके उड़ कर वायु में लिप्त हो जाते। मनुष्य का शरीर तो तूने निस्सन्देह पाया है। पर कर्म तेरा तिर्यग् जाति के अनुरूप है। तुझको हिताहित और कार्याकार्य का कुछ विवेक नहीं है।” मैंने सर्वसाक्षी चन्द्रमा की ओर देख हाथ जोड़ कर कहा कि “हे सर्वव्यापी ! यदि पुण्डरीक के बिछोह-दिन से आज पर्यन्त मैंने दूसरे पुरुष की चिन्ता न की हो, यदि मनसा

वाचा कर्मणा मैं उसकी सत्य उपासक हूँ; यदि मेरा अन्तःकरण पवित्र और निष्कलङ्क है तो मेरी बात सत्य हो अर्थात् यह तिर्य-क्-ज्ञाति में पतित होय ।” इतना मेरा कहना था कि न जाने कामदेव के प्रभाव से, अपने दुष्कर्म के कारण अथवा मेरे शाप-वश वह विप्रकुमार अचेत होकर ठूठे निर्मूल वृक्ष की भाँति पृथ्वी पर गिर पड़ा और उसके साथी एकस्वर होकर चिल्ला उठे। उनके मुख से मैंने सुना कि वे आपके मित्र थे। यह कह कर लज्जा से मुँह नीचा कर महाश्वेता रोने लगी।

इतनी देर पर्यन्त चन्द्रापीड़ उसकी बात सुनते रहे। अन्त में बोले—“हे देवी ! इस जन्म में तो कादम्बरी से समागम हो चुका। अब उस जन्म में जिसमें उस प्राणप्यारी का साथ हो ऐसी युक्ति करिए।” इतने में उनका हृदय विदर उठा और वे शिला से नीचे गिरने लगे कि तरलिका ने महाश्वेता को छोड़ भट उनको रोक लिया और कहा—“हे सखी, देखो चन्द्रापीड़ की क्या दशा हुई। मृतक शरीर की भाँति सिर गिरा जाता है; आँखें बन्द हो गईं और नाड़ी शून्य हो चली। प्राण रहने का कोई लक्षण नहीं पाया जाता। यह क्या हुआ। हे देव ! प्रियसखी कादम्बरी के प्राणवल्लभ की क्या दशा हुई।” यह कह कर तरलिका रोने लगी। महाश्वेता चन्द्रापीड़ की वह दशा देख काठ हो गई और चित्र सी खड़ी रही। “रे पापिन ! रे दुरात्मनि, तूने क्या किया ! जगत् का दीपक बुझ गया ! महाराज तारापीड़ का आज राजभङ्ग होगया ! महारानी विलासवती का आज सर्वनाश हो गया ! पृथ्वी अनाथ हुई ! हाय ! आज उज्जयिनी शून्य हो गई ! अब प्रजागण

कि न का मुँह देखेंगे ! हम सब किसकी शरण जायेंगी ! यह क्या बिना मेघ बिजली गिरी। चन्द्रापीड़ कहाँ गये ? जब महाराज हम लोगों से पूछेंगे तब हम उनको क्या उत्तर देंगे । परिचारक सब हा मरे ! कह कर विलाप करने लगे । इन्द्रायुध राजकुमार की ओर देख कर पाहन अश्व की भाँति खड़ा रहा और दोनों आँखों से आँसू बहाने लगे ।

उधर पत्रलेखा के मुँह से चन्द्रापीड़ के आने का समाचार सुन कर कादम्बरी फूली न समाती थी । प्राणेश्वर के मिलने की उत्कण्ठा ऐसी उमड़ी कि मार्ग-प्रतीक्षा न की गई । उनके प्रत्युद्गमन के उपलक्ष में उसने उज्ज्वल वेश धारण किया । मणिमय भूषण से भूषित, अङ्ग में अङ्गराग लगा कण्ठ में कुसुममाला पहिन, षोडश शृङ्गार कर अनेक परिजनों को ले वह घर से बाहर निकली । मार्ग में मदलेखा से पूछा कि क्या पत्रलेखा की बात सच है । चन्द्रापीड़ आते हैं ? हमको विश्वास नहीं होता । उनकी वह निर्दयता स्मरण करके उनकी ओर देखने की जी नहीं चाहता । मेरा कलेजा काँपता है । इतने में दहिनी आँख फड़कने लगी । यह क्या हुआ ? अभी क्या विधाता वृत्त नहीं हुए ? क्या और कोई इसमें भी कठिन आपत्ति आवेगी ? इस प्रकार चिन्ता करने करते वह महाश्वेता के आश्रम में पहुँची तो उसने देखा कि एक अद्भुत शोकमण्डली एकत्र है । थोड़ा और आगे बढ़ कर उसने देखा कि पुष्पहीन वाटिका, पल्लवशून्य वृक्ष और जलहीन सरोवर के समान प्राणहीन चन्द्रापीड़ का शरीर पृथ्वी पर पड़ा है । ज्योंही मूर्छित होकर कादम्बरी गिरने लगी, मदलेखा ने

उसे थाम लिया । पत्रलेखा अचेत होकर भूमि में लोटने लगी । कादम्बरी ने थोड़ी देर के अनन्तर आँख खोल कर चन्द्रापीड़ के शरीर को देखा और विरहवेदना से अचेत होकर वह भूमि में गिर पड़ी और सिर पीट पाट कर रोने लगी ।

मदलेखा कादम्बरी के चरण पर गिर कर दीनतापूर्वक कहने लगी कि हे सखी, क्या मर जाओगी ? सन्तोष करो । उसकी बात पर हँस कर उसने कहा, रे पागल, भय क्या है । मेरा हृदय तो पत्थर का है, यह तो वज्र से भी कठिन है । यदि अभी नहीं फटता तो फिर क्या फटेगा । हा मुझको मृत्यु भी नहीं है ! अब मरने के लिए इससे अच्छा दिन कौन होगा ? संसार के जंजाल से छूटने का यह अच्छा अवसर आया है । धन्य है ईश्वर कि मरते मरते मेरे प्राणप्यारे का दर्शन तो हो गया । फिर इनके देखने की कोई आशा न थी, परन्तु विबाता की कृपा से वह सुलभ हुआ । अब क्या विलम्ब है । केवल जीवित लोगों को माता, पिता, बन्धु, बान्धव, परिजन और सखीगण की अपेक्षा रहती है । अब उनसे क्या सम्बन्ध ? अब सकल क्लेश दूर हुआ । यातना शान्त हुई और सन्ताप निर्वाण हुआ । जिसके लिए लज्जा, धैर्य और कुलमर्यादा छोड़ विनय-परित्याग किया, गुरुजनों की अपेक्षा त्यागी, सखियों को क्लेश दिया, प्रतिज्ञा उल्लङ्घन की, वह प्राण-प्यारा प्राण त्याग कर स्वर्गलोक को गया और मैं जीती हूँ ! सखी, तू फिर उसी निन्दित और निर्लज्ज प्राण के रखने का अनुरोध करती है । यही सुख से मरने का समय है । निषेध न कर ।

यदि तुम सब हमें प्यार करती हो और हमारे हितसाधन

की इच्छा रखती हो तो जिसमें पिता, माता शोक से शरीर त्याग न करें, सखीगण और परिजन सूना घर देख कर इधर उधर न बले जायँ ऐसा उपाय करना । आँगन में जो अमोला है उसका निकटवर्तिनी माधवी लता से विवाह कर देना । देखो मेरे लगाये हुए अशोकवृक्ष के नये पत्तों को कोई तोड़े न, मेरे सिरहाने जो कामदेव का चित्र है उसे भली भाँति रखियो । कालिन्दी और परिहास नामक शुक को उड़ा देना । हमारे प्यारे हरिण को किसी वन में छोड़वा देना । नकुली को सदा अपनी गोद में रखना । क्रीड़ापर्वत पर जो चकोर का जोड़ा और हंस है उन्हें कोई छेश न देने पावे । वनमानुषी को घर में न रहने देना । किसी वन में छोड़वा देना और क्रीड़ापर्वत किसी तापस को दे देना । यह हमारे अङ्ग का भूषण लो, किसी दीन ब्राह्मण को दे देना । वीणा इत्यादि जो वस्तु तुम लोगों की रुचि हाँ ले लेना । अब मैं विदा होती हूँ । आओ एक एक बेर मिल तो लें । चन्द्रमा की किरण, चन्दन के रस, शीतल जल, सुशीतल शिला, कमलपत्र, कुमुद, कुवलय और शैवाल की शय्या से मेरा शरीर जलता है । अब प्राणेश्वर के गले लग कर प्रज्वलित चिता की आग में शरीर को भस्म करूँगी । मदलेखा से इतनी बात कह वह महाश्वेता के कण्ठ में चिपट कर कहने लगी, सखी ! तू आक्षारूपी मृगतृष्णा से मोहित होकर मरने के छेश को कठिन समझ कर सुख से कालयापन करती है । मुझ अभागिनी को वह भी आशा नहीं है । अब जगदीश्वर से यही प्रार्थना है कि जन्मान्तर में फिर प्रिय सखी से भेंट हो । यह कह कर वह

चन्द्रापीड़ के दोनों चरणों को गोद में लेकर बैठी और तुरन्त उसके शरीर से एक उज्ज्वल ज्योति उत्पन्न हुई और चारों ओर प्रकाश हो गया । फिर आकाश से यह शब्द हुआ कि “हे बेटी महाश्वेता ! तू मेरे कहने के अनुसार जीवन धारण कर । अवश्य तुझ से तेरे प्रियतम से भेंट होगी । सन्देह न करना । पुण्डरीक का शरीर हमारे तेज के स्पर्श से अविनाशी होकर इस लोक में स्थित है । चन्द्रापीड़ का भी यह शरीर हमारे तेज के कारण अविनाशी है । विशेषतः कादम्बरी के करस्पर्श से अब इसका क्षय नहीं हो सकता । पाप करके यह प्राणहीन हो गया । परन्तु योगी के शरीर की भाँति पुनः जीवित होगा । तेरे निश्चय के हेतु यह यहाँ है । इसका अग्निसंस्कार वा परित्याग न करना । जब तक जीवित न हो यथाशक्ति रक्षा करना ।”

आकाशवाणी सुन कर सब बड़े चमत्कृत हुए और एकटक आकाश की ओर देखने लगे । चन्द्रापीड़ के शरीर से ज्योति निकली थी । उसके स्पर्श से महाश्वेता फिर चैतन्य हुई और तुरन्त उठ कर इन्द्रायुध के निकट जाकर उसने कहा कि राज-कुमार तो गये । अब तुम अकेले कैसे रहोगे और साईस के हाथ से डमकी बाग छीन उसने भट आच्छोद-सरोवर में उसे ढकेल दिया और वह डूब गया । इसके अनन्तर एक जटाधारी मनुष्य उस में से निकला । उसके मस्तक के बाल और शरीर से पानी टपकने से जान पड़ा कि कोई जल-मनुष्य है । महाश्वेता उसको परिचित की भाँति देखने लगी । उसने भी निकट आ कर कहा कि

हे गन्धर्वराजपुत्री, तू मुझे चीन्हती है ? महाश्वेता ने शोक, विस्मय और आनन्द के वश होकर डरते डरते प्रणाम किया और वह गद्-गद् वचन से बोली कि हे महाराज, इस अभागिन को ऐसे कठिन क्लेश में छोड़ कर आप कहाँ चले गये थे ? अभी तक आप कहाँ थे ? अपने प्रिय सुहृद को कहाँ छोड़ आये ?

महाश्वेता को इस प्रकार बात करते सुन कादम्बरी उसके परिजन और चन्द्रापीड़ के साथी आश्चर्ययुक्त होकर उस जटिल पुरुष की ओर देखने लगे । उसने उत्तर दिया कि हे राजपुत्री, एकाग्रचित्त हो कर सुनो । जब तू विलाप कलाप कर रही थी, तुझ को अकेली छोड़ मैं यह कहता हुआ कि “रे दुष्ट बन्धु को लेकर कहाँ जाता है ?” उस पुरुष के पीछे पीछे चला गया । उसने मेरी बातों का कुछ उत्तर न दिया और स्वर्ग की राह ली । वैमानिक ससम्भ्रम देखने लगे और दिव्याङ्गना मार्ग छोड़ छोड़ कर एक पार्श्व में खड़ी हुई । मैं उसके पीछे पीछे चला । वह चन्द्र-लोक में पहुँचा और महोदया नाम सभा में एक मल्लिमय शय्या पर सखा के शरीर को रख कर उसने कहा कि हे कपिञ्जल, मैं चन्द्रमा हूँ । जगत् के हित के लिए गगनमण्डल में उड़्य हाँकर अपना काम करता था । तुम्हारे इस प्रिय पुरुष ने विरह-वियोग से प्राण त्याग करने के समय मुझको निरपराध यह शाप दिया—“रे दुष्ट ! तूने किरण-द्वारा प्रियाप्रेमासक्त पुरुष का प्राण हरण किया अतएव तुझको बारम्बार पृथ्वी पर जन्म लेकर हमारी भाँति प्रेम-फाँस में फँस कर दुःसह दुःख भोगना पड़ेगा ।” बिना अपराध शापित होने से मुझे क्रोध आया और मैंने

वैरभाव से यह कह कर प्रतिशाप दिया कि हे मूढ़, तू ने जैसा अब की बार दुःख भोगा वैसा ही सर्वदा भागेगा । जब क्रोध शान्त हो गया तब मैंने ध्यान कर देखा तो जाना कि मेरी किरण से जो कुल उत्पन्न हुआ है उसी कुल में एक गौरी नाम गन्धर्वकुमारी उत्पन्न हुई है । उसकी लड़की महाश्वेता ने इस पुरुष को अपना पति सङ्कल्प किया है । तब मुझे बड़ा शोक हुआ । परन्तु शाप दे चुका था । कोई उपाय न था । अब दोनों को पाप के कारण दो बार मृत्युलोक में जन्म लेना पड़ेगा । जब तक पाप का प्रायश्चित्त न हो तुम्हारे बन्धु का शरीर यहीं रहेगा । हमारी सुधामय किरणों के कारण यह सड़ेगा नहीं । पापान्त होने पर इसमें फिर प्राण आवेगा । इसी कारण मैं उसे उठा लाया हूँ । मैं महाश्वेता को भी आशा दे आया हूँ । तुम अब श्वेतकेतु ऋषि के पास जाकर उनके सामने यह सब वृत्तान्त वर्णन करो । वे बड़े प्रतापी हैं । अवश्य कोई उपाय बतावेंगे ।

चन्द्रमा के आज्ञानुसार मैं आकाशमार्ग से चला जाता था कि एक महाक्रोधी मनुष्य विमान पर चला जाता था । मैंने उसकी राह काट दी । इस पर वह बड़ा अप्रसन्न हुआ और भौंह तिरछी करके मेरी ओर देखने लगा । उसकी चेष्टा से जान पड़ता था कि क्रोध से मुझे भस्म कर डालेगा । वह बोला कि हे दुष्ट, तू भूठा तप करके अहङ्कारी हो गया । तू मेरा मार्ग भङ्ग करता है ? जा तेरा अश्वकुल में जन्म होगा । मैं सजलनयन हाथ जोड़ कर विनयपूर्वक बोला कि हे देव, मैंने वयप्रभाव से विरहान्ध होकर ऐसा काम किया । जान बूझ कर नहीं किया । अब मैं

क्षमा माँगता हूँ । कृपा कर शापनिवारण कीजिए । उसने कहा कि शाप अन्यथा नहीं हो सकता । तू घोड़ा हो कर पृथ्वी पर जिस का वाहन होगा वह जब मरेगा तब तू स्नान करेगा और फिर अपने स्वरूप को प्राप्त होगा । मैंने विनयपूर्वक कहा कि हे महाराज, पाप के कारण चन्द्रमा भूतल में जन्म लेंगे । मैं चाहता हूँ कि उन्हीं का वाहन होऊँ । उन्होंने ध्यान करके सब जान लिया और कहा कि हाँ उज्जयिनी का राजा तारापोड़ पुत्र के लिए धर्म कर्म का अनुष्ठान करता है । चन्द्रमा उसी के घर अवतार लेंगे और तेरा प्रिय पुण्डरीक भी उसके राजमन्त्री शुक्रनास के घर जन्म लेगा । जा तू उसी का वाहन होगा । जब उनकी बात समाप्त हुई मैं समुद्र में गिर पड़ा और घोड़ा हो कर तीर पर उठा । घोड़ा तो हुआ परन्तु मेरा पूर्व संस्कार विनष्ट नहीं हुआ । मैं ही चन्द्रापोड़ को किन्नरमिश्रुन के पोछे पीछे यहाँ तक लाया था । चन्द्रापोड़ चन्द्रमा के अवतार हैं और जो पूर्व जन्म के अनुरागवश प्रेमासक्त तुमसे मिलने को यहाँ आये और तुम्हारे शाप से विनाश हुए वे मेरे प्रिय पुण्डरीक थे ।

महाश्वेता ने कपिञ्जल की बातें सुन कर कहा कि हे देव, जन्मान्तर में भी तुमने मेरा अनुराग नहीं छोड़ा । हमों को ढूँढ़ते ढूँढ़ते इस स्थान पर आये थे । परन्तु मैं ऐसी राक्षसी हूँ कि बार बार तुम्हारे नाश का हेतु होती हूँ । कपिञ्जल ने कहा—हे गन्धर्व-राजकुमारी ! यह सब शाप का कारण था । तू क्या करेगी । अब जिस में अन्त अच्छा हो वैसा करो । जो अनुष्ठान तुमने आरम्भ किया है उसी में लीन रहो । तपस्या से सब कर्म साध्य हैं ।

पार्वती जैसे तपस्या करके शिव की प्रणयिनी हुई उसी प्रकार तू भी पुण्डरीक की सहधर्मिणी होगी । इसमें सन्देह नहीं । इन सब बातों से महाश्वेता को कुछ सन्तोष हुआ । कादम्बरी ने मलिन मुख करके कहा कि हे देव, पत्रलेखा भी इन्द्रायुध के साथ डूबी थी । इन्द्रायुध ने तो आप का शरीर पाया परन्तु वह क्या हुई । उन्होंने उत्तर दिया कि डूबने के अनन्तर जो जो कर्म हुए सो मैं नहीं जानता । चन्द्र के अवतार चन्द्रापीड़ और पुण्डरीक के अवतार वैशम्पायन ने कहाँ जन्म पाया और पत्रलेखा कहाँ गई यह सब बात श्वेतकेतु मुनि से ज्ञात होगी । यह कह कर कपिञ्जल आकाश को चले गये । जब वे चले गये परिजनों को विस्मय के कारण शोकसन्ताप सब भूल गया और यह समझ कर कि जब तक चन्द्रापीड़ और वैशम्पायन पुनर्वार जन्म न लें तब तक यहाँ रहना पड़ेगा । वे घर बनाने लगे और वहीं रहने की सामग्री एकत्र करने लगे । कादम्बरी ने महाश्वेता से कहा कि विधाता ने हम लोगों को समान दुःखभागिनी करके दृढ़ प्रकार से बाँधा है । आज तुझे प्रिय सखी कहके पुकारने में लज्जा नहीं आती । इतने दिनों में आज मैं तेरी यथार्थ प्रिय सखी हुई । अब क्या करना चाहिए ? उसका उपाय करो । क्या उपाय करने से हित होगा ? महाश्वेता ने कहा कि मैं क्या कहूँगी । निराश न होना चाहिए । आशा जो चाहती है वही मनुष्य से कराती है । मैंने केवल बात सुन कर उसके विश्वास पर प्राण रक्खा, तूने कपिञ्जल के मुख से सारा वृत्तान्त सुना है । जब तक चन्द्रापीड़ का शरीर निर्जीव रहे तब तक इसकी रक्षा करे । शुभ

फल के लिए लोग काठ, मिट्टी और पत्थर की मूर्तियों की पूजा करते हैं । तुमने तो प्रत्यक्ष देवता चन्द्रमा की मूर्ति पाई है । तुमसी भाग्यशालिनी और कौन होगी ? अब यत्नपूर्वक इसी को संवा करो ।

मदलेखा और तरलिका ने चन्द्रापीड़ के शरीर को उठा कर एक ऐसी शिला पर रखवा जहाँ शीत-वात असर न करे । जिसने अनन्त प्रकार के शृङ्गार करके प्रियतम से मिलने की अभिलाषा करके इतनी दूर आने का परिश्रम किया था अब उसको वल्कल, वसन इत्यादि धारण करके तपस्वी भेष बनाना पड़ा ! पुष्प, धूप, चन्दन इत्यादि वस्तुएँ जो आनन्द के लिए एकत्र की गई थीं अब देवार्चन में व्यय होने लगीं ! जल, गिरिगुहा, लता, वृक्ष, तरुशाखा और केकारव, दर्पण, गृह, सखी, रक्तक, चन्द्रातप और वाद्यों के स्थापन हुए । दूर से आने और ऐसे शोक में पड़ने से कादम्बरी का कण्ठ सूख गया था तथापि उसने कुछ जलपान न किया । सरोवर में स्नान कर पवित्र वस्त्रधारणपूर्वक प्रियतम के दोनों चरणों को गोद में रख कर उसने दिन व्यतीत किया । अब रात आई । एक तो वर्षा का दिन दूसरे अँधेरी रात, चारों ओर मूसलधार जल बरस रहा था । बादल गरज रहे थे । बीच बीच में बिजली चमकती थी । अँधेरे में वृक्षों पर जुगनू की चमक भगङ्कर जान पड़ती थी । भरनों की भर भर, दादुर की टर टर और मयूर की कूक से वन कोलाहलमय हो रहा था । कुछ देख नहीं पड़ता था और न कुछ सुन पड़ता था । कैसा भयानक समय था । ऐसे में बड़े बड़े धीरधारियों का धीर छूट

जाता है परन्तु कादम्बरी उस जङ्गल में प्रियतम का शरीर आगं रक्खे रात भर बैठी रह गई ।

दूसरे दिन सूर्योदय होने पर जो चन्द्रापोड़ के शरीर की ओर देखा तो कुछ बिगड़ा न था बरन और भी उज्ज्वल जान पड़ता था । तब प्रसन्न होकर वह मदलेखा से कहने लगी कि देखो सखी, ऐसा जान पड़ता है कि शरीर में प्राण आने लगा । उसने बड़ी देर तक देख कर कहा कि केवल वचनशक्ति जाती रही है और कोई भेद नहीं है । कपिञ्जल का कथन और आकाश-वाणी निस्सन्देह सत्य है । कादम्बरी ने आनन्द के मारे महाश्वेता का और फिर सब लोगों को वह शरीर दिखाया । साधियों ने आश्चर्ययुक्त नयन से शव को देख कर कहा कि हम लोगों ने ऐसा व्यवहार न कभी देखा और न सुना । यह एक अद्भुत लीला है । इसमें सन्देह नहीं । यदि तुम्हारी तपस्या के प्रभाव से राजकुमार फिर जी उठें तो हम सब परम कृतज्ञ हों । दूसरे दिन फिर वह दशा देख कर आकाशवाणी के सत्य होने में कोई सन्देह नहीं रहा । तब कादम्बरी ने कहा—हे मदलेखा, जब तक आशा है तब तक यहाँ रहना ही होगा अतएव तुम घर जाओ और यहाँ का समाचार माता पिता से कहना । वे जिसमें दुखी न हों और यहाँ न आवें ऐसा उपाय करना । यदि वे यहाँ आवेंगे तो मेरा अनुष्ठान टूट जायगा, अमङ्गल के भय से मेरी आँख से आँसू न निकलेगा । अब प्राणेश्वर की जीवनाशा में निस्सन्दिग्ध रोने से केवल अमङ्गल का भय है । यह कह उसने उसको बिदा किया ।

मदलेखा ने गन्धर्वनगर से लौट कर कहा कि हे बहिन !

तुम्हारा मनोरथ सिद्ध हुआ । रानी और राजा ने सम्पूर्ण वृत्तान्त सुन कर कहा कि हे बेटी, हम लोगों को जामाता के सङ्ग तुम्हें देखने की कोई आशा न थी । अपने आप पसन्द करके तूने विवाह किया और फिर चन्द्रमा के साथ, यह सुन कर चित्त बड़ा प्रसन्न हुआ । आशावसाने तुझको जामाता के सङ्ग देख कर अपने को कृतार्थ करूँगा । अभी आकाशवाणी के अनुसार धर्म कर्म करो जिसमें अन्त में कार्य सिद्ध हो । मदलेखा के मुँह से ये बातें सुन कर कादम्बरी का उद्वेग दूर हुआ ।

अब वर्षा विगत शरद ऋतु आई । मेघदल दूर हुआ और सूर्य ने अपने तेज से पङ्कमय मार्ग को शुष्क किया । नद, नदी और सरोवर इत्यादि का पानी निर्मल हुआ । राजहंस नदी के तीर पर मधुर सुर से कलरव करने लगे । काँस फूलों और इन्दीवर, कलहार और शेफालिका का सुगन्ध वायु द्वारा चारों ओर फैल गया । उज्ज्वल चाँदनी छिटकी और रमणियों का चित्त विहरने लगा । यात्री लोगों का कष्ट दूर हुआ और चतुर्दिक् धान की मञ्जरी दिखाई देने लगी और जल से प्रीति होने लगी । आकाश निर्मल होगया और कादम्बरी का मन सुस्थ हुआ ।

एक समय मेघनाद ने आकर कादम्बरी से कहा कि राज-कुमार को आये बहुत दिन बीत गये इसलिए राजा और रानी और मन्त्री ने बहुतेरे दूत भेजे हैं । हम लोगों ने उनसे सम्पूर्ण वृत्तान्त कहा और लौट जाने का अनुरोध किया परन्तु उन लोगों ने कहा हम राजकुमार का शरीर देखना चाहते हैं । इतनी दूर आकर यदि उनकी अवस्था बिना देखे जाय तो राजा रानी से

क्या कहेंगे । अब जो उचित हो कीजिए । यह समाचार सुन ससुरार के लोग बड़े दुखी होंगे यह चिन्ता कादम्बरी के मन में हुई और सजलनयन होकर उसने कहा कि वे ठीक कहते हैं । यह ऐसा व्यापार है कि देखने से भी विश्वास नहीं हो सकता और यदि वे देखेंगे नहीं तो राजा से क्या कहेंगे ? रानी को क्या कह कर समझावेंगे । एक बेर देख कर जिसका विस्मरण नहीं हो सकता उसके सेवक लोग उसकी प्राचीन प्रीति को कैसे भूल सकते हैं । राजकुमार के शरीर को देखने से उनका आना सफल होगा । आने दो । इसके अनन्तर दूतों ने आकर कादम्बरी को प्रणाम किया और वे राजा का शरीर देखने लगे । कादम्बरी ने कहा—तुम लोग शोक मत करो । जिस दुःख की सीमा न हो वही तो दुःख है । इसमें उसमें बड़ा भेद है । इसके अन्त में मङ्गल की आशा है । ऐसे आश्चर्य व्यापार में शोक करना अनुचित है । ऐसा व्यवहार न किसी ने कभी देखा और न सुना । प्राण निकल जाने पर शरीर का रङ्ग न बदले यह एक अद्भुत व्यापार है । अब तुम लोग लौट जाओ और प्रसन्नचित्त महाराज से कहना कि हम लोगों ने राजकुमार को आच्छाद सरोवर पर देखा था । यह समाचार उनसे न कहना । यदि कहेंगे तो उन्हें विश्वास न होगा, वरन वे प्राण त्याग दें तो आश्चर्य नहीं ।

दूतों ने कहा—देवी, हमारे न जाने या न कहने से यह संवाद गुप्त नहीं रह सकता । वैशम्पायन के ढूँढ़ने में जब राजकुमार को बहुत अतिकाल हुआ तब महाराज ने हम लोगों को भेजा । यदि हम न जायें तो बड़ा अनर्थ हो और जाकर उन लोगों

का आशायुक्त मुँह देख कर धीर धारण कठिन है । कादम्बरी ने कहा—हाँ ठीक है, परन्तु उनकी मानसिक पीड़ानिवारण के लिए मैंने ऐसा कहा । जो हो, मेघनाद, इन लोगों के साथ एक कोई सुज्ञ पुरुष भेजो जो सम्पूर्ण समाचार जानता हो । उसने कहा—देवी, हम लोगों ने प्रतिज्ञा की है कि जब तक राजकुमार पुनर्जीवित न हों हम लोग वन में रहेंगे; कभी छोड़ कर न जायेंगे । “सेवक वही बखानिए विपति माँह प्रभु सेव” परन्तु आप की भी आज्ञा प्रतिपालन करना हमारा धर्म है । यह कह कर त्वरितक नाम एक विश्वासपात्र सेवक को दूतों के सङ्ग उसने राजधानी को भेज दिया ।

उधर रानी ने बहुत दिनों से चन्द्रापीड़ का समाचार नहीं सुना था । इससे वे बड़ी दुखी थीं । एक समय देवार्चन के निमित्त मन्दिर में गईं । वहाँ परिजनों ने कहा—जान पड़ता है आज देवता प्रसन्न हुए । राजकुमार का समाचार आया । यह बात सुन कर रानी की आँखों में पानी भर आया और वत्सहीन हरिणी की भाँति चारों ओर देख कर गद्गद स्वर से वे बोलीं कि क्यों, कौन आया है ? यह सुसमाचार कौन लाया है ? पुत्र चन्द्रापीड़ कुशल से तो है ? वे उस पुरुष के निकट गईं और बोलीं । “मेरा अन्तःकरण बड़ा व्याकुल है शीघ्र पुत्र का समाचार सुनाओ, वे कैसे हैं ?” उन्होंने रानी की वह दशा देख आँख का आँसू पोछ कहा कि हमने उनको आच्छोद सरोवर के तीर पर देखा और शेष संवाद इस त्वरितक से सुनिए ।

रानी को उनका मलिन आकार देख कर अमङ्गल का सन्देह

हो ही रहा था । त्वरितक का नाम सुन कर विषण्ण होकर वे भूमि पर गिर पड़ों और मस्तक पर हाथ मार कर बोलों कि अब त्वरितक क्या कहेगा ? तुम्हारे मलिन वदन, कातर वचन और हर्षरहित आगमन से सब प्रकट होगया । हा पुत्र ! हा जगदेक-चन्द्र ! हा चन्द्रानन ! तुम्हें क्या हुआ ? तुम घर क्यों नहीं आये ? तुम तो कह गये थे कि मैं शीघ्र आऊँगा । यह क्या हो गया ? तुम तो कभी हमसे झूठ नहीं बोलते थे ? अब की क्यों विश्वास-घात किया ? तुम्हारे जाने के समय मेरे मन में शङ्का हुई थी । क्या वह शङ्का सत्य हुई ? क्या अब तुम्हारा मुखकमल फिर न देख पाऊँगी ? तुमने क्या अब हम लोगों को छोड़ ही दिया ? हे बेटा ! एक बार आकर मेरे अङ्ग को सुशोभित करो और मीठे स्वर से माता कह कर कर्णपुट को पवित्र करो । हा ! अब कौन मुझे माता कह कर पुकारेगा ? तुम तो कभी मेरी आज्ञा उल्लङ्घन नहीं करते थे । अब कैसे निठुर हो गये ? उत्तर क्यों नहीं देते ? तुम ऐसा न समझना कि तुम्हारे न होने पर मैं जीती रहूँगी । त्वरितक के मुख से तुम्हारा समाचार सुनने में भय होता है । यह सुनना न पड़े सोई अच्छा है और यही कहते कहते वह विमोहित हो गई ।

जब राजा को यह समाचार पहुँचा तब वे बड़े व्याकुल हुए और शुकनास को लेकर वहाँ जा कर उन्होंने देखा तो कोई रानी को पङ्खा झल रहा है, कोई पानी छिड़क रहा है और कोई हाथ से शरीर पोछ रहा है । कुछ कालानन्तर रानी चैतन्य हुई और रोने लगी । राजा ने कहा कि यदि चन्द्रापीड़ को कोई भला

बुरा हो गया तो अब क्या रोने से वह छूट जायगा और अभी तुमने सम्पूर्ण वृत्तान्त तो सुना भी नहीं । पहले सब बातें सुन लो फिर जो उचित हो किया जायगा । यह कह उन्होंने त्वरितक को बुलवाया और पूछा कि चन्द्रापीड़ कहाँ हैं और कैसे हैं ? मैंने उनको पत्र द्वारा बुलवाया था । वे आये क्यों नहीं ? त्वरितक ने सम्पूर्ण वृत्तान्त सविस्तर वर्णन किया । राजा सुनते सुनते घबरा गये और बोले कि बस करो, जो कुछ सुनना था सो सुन चुके । हा पुत्र ! प्राणान्त का दुःख अकेले तुम्हीं ने अनुभव किया । बन्धु के प्रति जैसा प्रेम प्रकाश करना चाहिए वैसा तुम्हीं ने किया । अरे दुष्ट जीव ! तू व्याकुल क्यों होता है ? यदि आपसे न निकलेंगा तो बलात् तुम्हें को निकाल दूँगा । हे प्रिया ! उठ बैठो । यह धीर-धारण का समय है । चन्द्रापीड़ अकेले चल दिये । हम लांग भो उनके पोछे पोछे चलेंगे । अब विलम्ब करना अकारण है । हे अभागे शुकनास ! अभी तू खड़ा है ! प्राणपरित्याग का अब इससे बढ़ कर कौन समय होगा ? शीघ्र चिता प्रस्तुत कर । इस शरीर की जलन आगही से मिटेगी । त्वरितक ने डरते डरते हाथ जोड़ कर कहा कि महाराज, जैसी शङ्का कर रहे हैं वह बात नहीं है । राजकुमार के शरीर से प्राण तो निकल गया है परन्तु एक आश्चर्य यह है कि रङ्ग फीका नहीं पड़ा । उसने आकाशवाणी का सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया । यह समाचार सुन कर राजा का शोक तो जाता रहा, विस्मय उत्पन्न हुआ और वे शुकनास का मुँह देखने लगे ।

मन्त्री यद्यपि आप भी शोकासक्त था परन्तु वह धैर्याविलम्बन-

पूर्वक राजा को अनेक प्रकार सन्तोष देने लगा और कहने लगा कि इस विचित्र संसार में प्रकृति का परिणाम, भगवान् की इच्छा, शुभाशुभ कर्मों का परिपाक और स्वाभाविक ही नाना प्रकार के कार्यों की उत्पत्ति और नाना प्रकार की घटनायें होती हैं । शास्त्रकारों ने ऐसी ऐसी बातें लिखी हैं जो बुद्धि अथवा तर्कशक्ति द्वारा सिद्ध नहीं होतीं परन्तु इस कारण उनको मिथ्या नहीं कह सकते । साँप के काटे और विष के मारे मन्त्र द्वारा पुनर्जीवित हो सकते हैं । योगी लोग योग द्वारा सम्पूर्ण संसार को हस्तामलक समान समझते हैं । ध्यानस्थित होकर लोग बहुत काल तक जीते रहते हैं । रामायण और महाभारत आदि पुराणों में शाप-वृत्तान्त अनेक प्रकार के लिखे हैं । नहुष राजा ने अगस्त्य ऋषि के शाप से अजगर का जन्म पाया । वशिष्ठमुनि के पुत्र-शाप से सौदास राक्षस हुआ । शुक्राचार्य के शाप से ययाति जवान से बूढ़ा हो गया । शाप ही करके त्रिशङ्कु को चाण्डाल-कुल में जन्म लेना पड़ा । और क्या कहें शापवश अच्युतानन्द भगवान् भी समय समय पर नाना प्रकार का अवतार लेते हैं । अतएव मर्त्यलोक में देवताओं का आना असम्भव नहीं है । आप प्राचीन काल के राजाओं से कुछ कम नहीं हैं । चन्द्रमा कुछ भगवान् से बड़ कर नहीं हैं । यदि वे शाप के कारण आपके आत्मज हुए तो कुछ आश्चर्य नहीं है । आप अपने स्वप्न का स्मरण कीजिए । आपने देखा था कि रानी के गर्भ में पूर्ण चन्द्र प्रवेश करता है और मैंने एक पुण्डरीक देखा था । अब धीर धारण कीजिए । शाप के अन्त समय हम लोगों को बर

होगा । हम लोगों के ऐसा भाग्यवान कौन है ? थोड़े दिनों में वधू-समेत चन्द्रापीडरूपी चन्द्रमा को देख कर नयन सफल करेंगे । अब शोक करना उचित नहीं । वरन पुण्यकर्म का अनुष्ठान कीजिए । विधाता को कोई कर्म असाध्य नहीं है ।

शुकनास ने कितना समझाया पर राजा का शोक दूर नहीं हुआ । उन्होंने कहा—हे शुकनास ! तुमने जो कहा सो ठीक है परन्तु मेरा मन स्थिर नहीं होता । जब कि मेरी यह दशा है तब रानी तो खो हैं । वे कैसे सन्तोष कर सकती हैं । चलो, हम लोग आप चल कर चन्द्रापीड के शरीर को देखें तब चाहे तो कुछ शिथिलता हो । रानी ने कहा—फिर अब विलम्ब करना उचित नहीं । शीघ्र चलने की तैयारी करो । उसी समय एक बूढ़े ने आकर कहा कि चन्द्रापीड और वैशम्पायन के यहाँ से आदमी आने का समाचार सुन कर मनोरमा मन्दिर के पीछे खड़ी हैं और पूछती हैं कि उनका क्या समाचार है ? उनके आने का समाचार सुन कर राजा बड़े दुखी हुए और आँखों में आँसू भर कर विलासवती से बोले कि हे प्रिया, तू स्वयम् उसके पास जाकर समझा कर कह कि तुम भी हम लोगों के सङ्ग चलो । चलने की तैयारी हुई । राजा, रानी, मन्त्री और उनकी स्त्री सब चले और नगरनिवासी भी कोई राजा के प्रीतिवश और कोई मन्त्री के प्रीतिवश सङ्ग चले परन्तु राजा ने सबको समझा कर शान्त किया । वे केवल परिचारक को सङ्ग लेकर चले ।

कुछ दिन के अनन्तर वे आच्छोद सरोवर के तीर पर पहुँचे ।

और वहाँ से पहले कादम्बरी और महाश्वेता के यहाँ कहला भेजा और पीछे से आप पहुँचे । गुरुजनों के आगमन से महाश्वेता लज्जित होकर मन्दिर के भीतर चली गई और कादम्बरी शोकान्वित होकर मूर्च्छित हो गिर पड़ी । जो परम कोमल शय्या पर भली भाँति नहीं सो सकती थी उसे पत्थर की चट्टान पर निधड़क सोते देख रानी के मन में बड़ा क्रोध हुआ और बारम्बार अङ्ग में लेकर नेत्रमुख चुम्बन करके वह विलाप करने लगी — “जन्मान्तर के सुकर्म से मैंने चन्द्रापोड़ की माता का पद पाया, परन्तु वह देवता का अवतार है । उसे स्पर्श करना उचित नहीं । पुत्र कलत्र का विरह बड़ा दुखदाई होता है । हे पुत्र ! जिसके कारण तू फिर जीयेगा और जिसके प्रभाव से अन्त में लोग तेरी सेवा करेंगे, वह तेरी वधू गन्धर्वराजकुमारी तेरे सामने बैठी रोती है । तू देखता भी नहीं । जिसमें इसका शोक दूर हो वैसा उपाय करो । हे वधू, तू कहाँ है” । उसने कादम्बरी के निकट जाकर उसे खींच अपनी गोद में बैठा लिया । जितना उसका मुँह देखती थी उतनाही आँखों से आँसू की धारा बही चली जाती थी । “कहाँ मैंने चाहा था कि चन्द्रापोड़ का विवाह करके वधू का मुख देख कर मन प्रसन्न करूँगी । परन्तु दुष्ट विधाता ने उस वधू को वैधव्यावस्था और तपस्वोभेष में दिखलाया । हा ! जिसको राजभवन की स्वामिनी करने का विचार था वह वनसेवन करती है ।” यह कह वह फिर उसका मुँह चूमने लगी । रानी के आँसू के टपकने से और स्पर्श से कादम्बरी फिर चैतन्य हुई और लज्जा से मुँह नीचे

किये हुए उसने सम्पूर्ण गुरुजनों को प्रणाम और सब ने आशीर्वाद दिया कि विधना तुम्हारी वैधव्य-अवस्था दूर करे । राजा ने मदलेखा को बुला कर कहा कि तुम जाकर वधू से कहो कि हम लोग केवल देखने आये हैं । जिसमें तुम्हारा सज्जा के कारण नियम इत्यादि न बिगड़े ऐसा कर्म करना और सदा पुत्र के समीप बनी रहना । यह कह वे आश्रम के बाहर चले गये ।

वहाँ से थोड़ी दूर पर एक लतामण्डप में वासस्थान बना कर सम्पूर्ण राजा लोगों को बुला कर वे कहने लगे कि मैंने विचारा था कि चन्द्रापीड़ को राज्य सौंप कर और आप तृतीय आश्रम में प्रवेश कर भगवद्भजन में दिन व्यतीत करूँगा परन्तु मेरा मनोरथ सिद्ध नहीं हुआ । तुम लोग हमारे सहोदर और परम मित्र हो । नगरी में जाकर अच्छी भाँति राज-काज और प्रजापालन करो । अब मैं परलोक में परित्राण होने के उपाय में नियुक्त होता हूँ । जो कोई भाई वा पुत्र को संसारभार समर्पण करके ईश्वर की सेवा करे वही धन्य है । इस परम अशुद्ध मिट्टी के पिण्ड द्वारा जो कुछ धर्म हो सके वही सफल है । धर्म-सञ्चय के व्यतिरिक्त और कोई परित्राण का उपाय नहीं है । अब तुम सब जाओ और अपने अपने घर जाकर सुख से राज-काज करो । मैं यहीं रहूँगा । यह कह कर सब को विदा कर तपस्वी भेष धारण करके राजा ईश्वर की आराधना में नियुक्त हुए ।

जावालि ऋषि कथा समाप्त कर हँस कर बोले—“देखो मैंने तुम लोगों के अभिप्राय से बहुत बढ़ कर वर्णन किया । जो हो,

जिस मुनिकुमार ने कामासक्त होकर अपने पाप के कारण मर्त्यलोक में जन्म लिया और महाश्वेता के शाप से पक्षिकुल में पतित हुआ वह यही है” यह कह कर उन्होंने उङ्गली से मेरी ओर सङ्केत किया ।

उनकी कथा समाप्त होने पर मुझे पूर्व जन्म का सम्पूर्ण कर्म स्मरण हो गया और जन्मान्तर की विद्या फिर से नई हो गई और तभी से मनुष्य की भाँति मैं बात करने लगा । ऐसा जान पड़ा कि निद्रा से जग पड़ा । केवल मनुष्यदेह नहीं मिली, नहीं तो चन्द्रापीड़ की प्रीति, महाश्वेता का अनुराग और उसके प्राप्त करने की उत्कण्ठा उसी प्रकार मन में उत्पन्न हुई । जन्मान्तर की कथा सुनने से पिता, माता, महाराज तारापीड़, रानी विलासवती, मित्र चन्द्रापीड़ और प्रथम सुहृद कपिञ्जल सब स्मरण हुए । उस समय की मैं अपने अन्तःकरण की दशा वर्णन नहीं कर सकता । बड़ी देर तक सोचता रहा और मन में अनेक प्रकार की तरङ्गें उठने लगीं । ऋषि ने मेरा अविनय सब के सामने प्रकट किया । इससे लज्जा होने लगी और मुँह नीचा करके मैंने पूछा कि हे देव, आपकी कृपा से मेरे पूर्वजन्म के सम्पूर्ण विषय स्मृत हुए और मित्रगण याद आये । उसका न स्मरण होना ही भला था क्योंकि अब विरह दुःख देता है । विशेष कर जिसने मेरा मरणसंवाद सुन कर प्राण त्याग किया था उस के देखने की लालसा मन में लग रही है । कृपा कर उसका जन्म-स्थान बता दीजिए । यद्यपि मैं पक्षी होगया हूँ पर उसके साथ रहने में मुझे कुछ क्लेश न होगा । ऋषि मेरी ओर देख कर क्रोध

से बोले कि रे दुष्ट, जिस पथ में पड़ कर तेरी यह दशा हुई है फिर उसी कर्म की चेष्टा करता है ? अभी पर भी नहीं जमे, पहले उड़ने की सामर्थ्य प्राप्त कर । फिर उसका स्थान बता दूँगा ।

हे तात ! मुनिकुमार के मन में ऐसा विकार एकाएकी क्यों उत्पन्न हुआ कि अब प्राण-धारण नहीं हो सकता ? परम पवित्र लोक में जन्म लेकर आयु कम क्यों हुई । हम लोगों के मन में यह एक बड़ा विस्मय उत्पन्न हुआ है । कृपापूर्वक इसका भी निवारण कीजिए । हारीत की यह बात सुन कर ऋषि ने कहा कि “पुत्र उत्पन्न होने के समय माता की जैसी मनोवृत्ति होती है पुत्र को भी वही दशा प्राप्त होती है । पुण्डरीक के जन्म समय लक्ष्मी रिपुपरतन्त्र हुई थी । इसी कारण पुण्डरीक वैरी द्वारा असमय कालग्रास हुआ । शास्त्रकार लोग कहते हैं कि कार्य सर्वदा कारण का अनुगामी है परन्तु शाप उद्धार होने पर इसकी आयु लम्बी होगी ।” मैंने फिर पूछा कि देव ! मैं कैसे दीर्घायु हूँगा उसका उपाय बता दीजिए । उन्होंने उत्तर दिया कि धीरे धीरे सब जान पड़ेगा ।

उपसंहार ।

कथा कहते कहते रात बीत गई और पम्पा-सरोवर पर हंस बालने लगे । प्रातःकालिक समीर धीरे धीरे बहने लगा । चाँदनी मन्द हुई । घास और पत्तों पर की ओस मोती की भाँति शोभा देने लगी । ऋषि लोग होम का समय समझ कर उठे । मुनिकुमारों का मन कथा में ऐसा लग गया था और उसके

सुनने पर वे ऐसे विस्मयासक्त हो गये थे कि उन्होंने गुरु को प्रणाम भी नहीं किया और उठ उठ कर नित्यक्रिया करने लगे । हारीत मुझको अपनी पर्णशाला में रख कर बाहर गये । उस समय मैंने मन में सोचा कि अब क्या करना चाहिए । जिस देह में प्राप्त हुआ हूँ यह अति अकिञ्चन है, किसी प्रकार योग्य नहीं है । बिना किसी सुकृत के मनुष्यदेह नहीं मिल सकता । इसलिए अब सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मण के कुल में जन्म लेना तो अति कठिन है और दिव्यलोक में निवास की तो कुछ बात ही नहीं । अब कब अपने पाप से मुक्त हूँगा ? पूर्वजन्म के बान्धवगण से भेंट होने की अब कोई सम्भावना नहीं है । अब इस देह का कुछ प्रयोजन नहीं । अब प्राण ही त्यागना उचित है । विधना के मन में यही है कि मुझे एक दुःख से छुड़ा कर दूसरे में डाले । उसी के मन की सही ।

मैं इस प्रकार तर्कना कर रहा था कि हारीत ने आकर कहा कि तुम्हारा पूर्व सुहृद् कपिञ्जल श्वेतकेतु के पास से तुम्हें ढूँढ़ता ढूँढ़ता आया है । बाहर पिता के सङ्ग बात करता है । मैंने प्रसन्न होकर पूछा कि वे कहाँ हैं हमको उनके पास ले चलो । इसी अन्तर में कपिञ्जल मेरे पास आ पहुँचे । उनको देखते ही मेरी दोनों आँखों से आँसू निकलने लगा । मैंने कहा कि हे सखा, आज बहुत दिनों पर मेरा तेरा साक्षात् हुआ है । जी चाहता है एक बेर गले से लगा लूँ । इतने में उन्होंने तुरन्त उठा कर मुझे हृदय से लगा लिया और मेरी दुर्वशा देख कर वे रोने लगे । मैंने कहा—तुम मेरे समान अज्ञान नहीं हो । तुम्हारा स्वभाव कभी विचलित नहीं होता । इस समय तुम्हें क्या होगया ? धीरे

धारण करो । बैठो, ठण्डे हो और पिता का कुशल समाचार कहो । कभी वे इस अभागे को स्मरण करते हैं ? मेरी दारुण अवस्था का समाचार सुन कर उन्होंने ने क्या कहा ? क्रोधित तो बहुत हुए होंगे ।

कपिञ्जल ने हाथ मुँह धो ठण्डे हो कहा कि महाराज अच्छी तरह से हैं और ज्ञानदृष्टि द्वारा हम लोगों का सम्पूर्ण समाचार जान उद्धार के लिए अनुष्ठान करते हैं । मैं उसी के प्रभाव से घोड़े का रूप छोड़ अब उन्हीं के पास रहता हूँ । मुझको अप्रसन्न और भीत देख कर उन्होंने कहा कि जो कुछ हुआ उसमें तुम्हारा कुछ दोष नहीं । मैंने जान कर इसके विषय में श्रम नहीं किया । इससे यह हमारा दोष है । देखो पुत्र पुण्डरीक के लिए यह अनुष्ठान करता हूँ जब तक समाप्त न हो तब तक तुम यहीं रहो । तब मैंने निडर होकर कहा कि हे तात, पुण्डरीक का जहाँ जन्म हुआ हो मुझे वहाँ जाने की आज्ञा कीजिए । उन्होंने कहा—बेटा, तुम्हारा साथी तोते के आकार में है । तुम उसको पहचान न सकोगे और न वह तुम्हें चीन्हेगा । आज प्रातःकाल उन्होंने ने मुझको बुला कर कहा कि तुम्हारा साथी जाबालि ऋषि के आश्रम में है । पूर्वजन्म का समाचार सब उसको ज्ञात होगया है । अब तुमको देखते ही पहचानेगा । अब तुम उसके पास जाओ और जब तक यह अनुष्ठान समाप्त न हो तब तक उसको वहीं रहने का आदेश दो । तुम्हारी माता लक्ष्मी भी उसी कर्म में लीन है । कपिञ्जल यह कह कर मेरा शरीर पोछने लगे । मैं भी घोड़े की अवस्था में जो जो

कृश उसको पड़े थे उनका स्मरण करके रोने लगा । दोपहर को आहारादि करके मुझसे कपिञ्जल ने कहा कि जब तक वह कर्म समाप्त न हो तब तक तुम यहीं रहो । मैं भी तो इसी कर्म में नियुक्त हूँ । इससे अब जाता हूँ । यह कह देखते देखते वे आकाश में गुप्त होगये ।

हारीत यत्नपूर्वक मेरा प्रतिपालन करने लगे । धीरे धीरे मैं पुष्ट हुआ और पर जमे तो उड़ने की इच्छा होने लगा । मन में आया कि अब तो उड़ने की शक्ति हुई; चलो एक बेर महाश्वेता के आश्रम में चलें । मैं उत्तर दिशा को चला । कभी चला तो था नहीं, थोड़ा ही दूर में थक गया और प्यास से कण्ठ सूख गया । तब एक सरोवर के तीर पर एक कुञ्ज के ऊपर बैठ गया । मीठा मीठा फल खा कर पानी पिया तो नौद मालूम होने लगी और वहीं सो रहा । जब नौद उचटी तो देखा कि सामने एक व्याधा खड़ा है । उसको देखते ही शरीर काँपने लगा और जीवनाशा जाती रही । मैंने उससे कहा कि तू कौन है और तैने क्यों मुझे फँसाया है ? यदि खाने के लिए पकड़ा है तो सोते ही मार क्यों नहीं डाला ? और यदि खेल के लिए पकड़ा है तो अब कृपा कर छोड़ दे । निरपराध को क्यों व्यर्थ दुःख देता है ? मैं अपने प्रिय के मिलने को जाता हूँ । अब विलम्ब होता है । तू भी जीव है । समझ कि प्रियतम के न मिलने से मन कैसा व्यग्र होता है ?

व्याधे ने उत्तर दिया कि मैं चाण्डाल हूँ । परन्तु आमिष के लालच से मैंने तुम्हको नहीं पकड़ा है । मेरा स्वामी पक्ष

देश का राजा है । उसकी प्रिय कन्या ने सुना है कि जाबालि मुनि के आश्रम में एक आश्रय शुक पत्नी रहता है । वह मनुष्य की भाँति बात करता है । सुनते ही उसने बहुत से मनुष्यों को इधर उधर भेजा । मैं कई दिन से तुम्हको ढूँढ़ता था, आज पता लगा । अब ले चल कर उसको सौंप दूँगा । वह चाहे रखे चाहे छोड़ दे । उसकी बात सुन कर मुझे बड़ा खेद हुआ और मैं मन में कहने लगा कि देखो मैं कैसा अभाग हूँ । पहले दिव्यलोकवासी ऋषि था, फिर मनुष्य हुआ । अन्त को शुक होकर जाल में बँधा और चाण्डाल के घर जाता हूँ । वहाँ उस की लड़की की काड़ासामग्रा होकर उसी के अन्न से शरीर पोषण करना पड़ेगा । हा माता ! तूने मुझ को गर्भही के समय क्यों नहीं मार डाला । हा पिता ! अब यह क्लेश सहा नहीं जाता । हा विधाता, क्या तेरे मन में यही था । फिर एक बेर किरात से रं कर मैंने कहा कि हे भाई, मैं जाति का ऋषि हूँ । क्यों मुझे चाण्डाल के घर में ले जाकर अपवित्र करते हो । छोड़ दो । तुम्हें बड़ा पुण्य होगा । मैंने बहुत कुछ कहा पर उसके मन में दया का सञ्चार नहीं हुआ । वरन वह कहने लगा कि रे मोहान्ध ! पराधीन की क्या सामर्थ्य कि अपने स्वामी की आज्ञा को उल्लङ्घन करे । वह पकण देश की ओर चला । थोड़ी दूर जाकर जाकर क्या देखता हूँ कि कोई मृग फँसाने का उद्योग कर रहा है, कोई धनुष बाण सुधार रहा है, कोई जाल बना रहा है । किसी के हाथ में कोदण्ड है और किसी के हाथ में माला और सबका आकार भयङ्कर है और मद्य के कारण नेत्र

अरुण हो रहे हैं । कहीं मरा हरिण का बच्चा पड़ा है । कोई मांस बना रहा है । बहुत से पक्षी पिञ्जर में बँधे भूख प्यास के मारे चिल्ला रहे हैं और कोई एक बूँद पानी नहीं देता । यह व्यापार देख कर मैंने समझ लिया कि यही चाण्डालराज है । उसका घर यमराज के घर के समान बोध हुआ । अर्थात् वहाँ एक भी ऐसा मनुष्य न देख पड़ा जिसके हृदय में कुछ दया होती । किरात ने मुझे चाण्डाल-कन्या को दे दिया और उसने सन्तुष्ट होकर मुझे एक काठ के पिञ्जर में रक्खा । तब मैंने अपने मन में कहा कि यदि विनयपूर्वक कन्या से छोड़ देने के लिए निवेदन करूँ तो वह जान जायगी कि यह मनुष्य की भाँति बोलता है और फिर कभी न छोड़ेगी । यदि कुछ न बोल्ँ तो यह समझ कर कि शठता से नहीं बोलता और भी दुःख देगी । अब बड़ी कठिनता हुई । बात करने से तो कदापि न छोड़ेगी । यों चाहे छोड़ भी दे । तब मैंने मौन-साधन किया । सबने मेरे बुलाने के लिए बड़ा श्रम किया, पर जब कोई मुझे मारे तो मैं दीर्घ स्वर से चिल्लाने लगूँ । चाण्डालकन्या ने फल, मूल इत्यादि नाना प्रकार की खाने की वस्तु मेरे सामने रक्खी पर मैंने कुछ न खाया । दूसरे दिन भी इसी प्रकार खाने को मेरे सामने रक्खा गया । जब मैंने न खाया तब उसने कहा कि बड़े आश्चर्य की बात है कि पशु पक्षी भी भूख लगने पर नहीं खाते । तू क्या कोई बड़ी जाति का है कि भक्ष्याभक्ष्य का विचार करता है अर्थात् चाण्डाल का छुआ नहीं खाता । तुम पहले जो थे सो थे । अब तो तोते के कलेवर में हो ।

पक्षियों को इसका विचार नहीं होता । विशेष करके मैं तो अच्छा अच्छा मूल फल लाई हूँ; जूठा नहीं है । इसके खाने में कोई बराव नहीं करता । शास्त्रकारों ने लिखा है कि पानी कभी अप-वित्र नहीं होता । तो फिर तुम्हारे खाने पीने में क्या दोष है ?

चाण्डालकन्या की न्याययुक्त बात सुन कर मैं बड़ा विस्मित हुआ और फल-भक्षण और जल-पान करके सन्तुष्ट हुआ । परन्तु बोला नहीं । क्रमशः युवा अवस्था आ पहुँची । एक समय पिञ्जरे में सो रहा था, जब आँख खुली तब देखा कि पिञ्जरा सोने का और नगर अमरपुर हो गया । चाण्डालकन्या को जैसा आपने देखा वैसा ही मैंने भी देखा । मन में सोचा था कि इसकी व्यवस्था किसी से पूछूँगा । इतने में यहाँ आया । यह कन्या कौन है; अपने को चाण्डालकुल की क्यों कहती है; मुझको क्यों पकड़-वाया और क्यों आप के पास लाई है यह मैं नहीं जानता ।

राजा जब शुक का इतना लम्बा वृत्तान्त सुन चुके तब उन्होंने प्रतिहारी को चाण्डालकन्या के लाने की आज्ञा दी और उसने उसे तुरन्त ला कर उपस्थित किया । कन्या ने शयनागार में प्रवेश करते ही कहा—हे भुवनभूषण ! हे रोहिणीपति ! हे कादम्बरीलोचनानन्द ! हे चन्द्र ! आपने अपना और शुक का वृत्तान्त सुना । यह पत्नी अपने पिता की बात उलझन कर महा-श्वेता के पास जाता था सो भी आपने सुना । मैं इसकी माता हूँ । ऋषि ने जब अपनी ज्ञानदृष्टि द्वारा देखा कि यह फिर कुपथ में पाँव धरा चाहता है तो मुझसे कहा कि तू भूलोक में जा और जब तक अनुष्ठान पूर्ण न हो उसे बाँध कर रख और पश्चात्ताप

की शिक्षा दे । कौन जाने कर्मदोष से फिर और किसी योनि में जाता रहे । दुष्कर्म से कोई बात कठिन नहीं है । मैंने उनकी आज्ञा प्रतिपालन करके उसे अब तक बाँध कर रक्खा । आज वह कर्म समाप्त होगया । इस हेतु मैंने तुम्हारा परस्पर मिलाप करा दिया । अब इस अनित्य देह को परित्याग करके अपनी वाञ्छित वस्तु को लाभ करो । यह कह वह कन्या आप गुप्त होगई ।

लक्ष्मी की बात सुन कर राजा को पूर्वजन्म की बातें स्मरण होगई । उसी समय मकरध्वज कादम्बरी-मूर्ति उनके हृदय में स्थापित कर कुसुमशर से आघात करने लगा और प्रिया का विरह दुःख देने लगा । इधर वसन्तकाल भी आ पहुँचा । चारों ओर कोकिल बोलने लगीं । अशोक, किंशुक, कुरुबक और चम्पक आदि कुसुममय हुए । अमरों की अवली भनकार करती हुई इधर उधर घूमने लगी । वृत्तों में नये नये पत्ते निकले और फल से डालियां झुक गईं । कमल फूलने से सरोवर की शोभा कुछ और ही हुई और मदनमहोत्सव का समय आगया । एक बेर कादम्बरी ने स्नान कर भक्तिपूर्वक कामदेव की अर्चना की । चन्द्रापीड़ के शरीर को भली भाँति धो कर गले में पुष्पमाला पहिराई और कान में अशोकसुमिरनी, अर्थात् भली-भाँति विभूषित करके वह बारम्बार देखने लगी । एक तो वसन्तकाल, दूसरे निर्जन स्थान पा कर कामदेव ने भी अपना प्रभाव प्रकाशित किया । कादम्बरी उन्मत्त हो जीवित की भाँति चन्द्रापीड़ का आलिङ्गन करना चाहती थी कि वे भी तुरन्त जी उठे । कादम्बरी मारं भय के काँपने लगी तब राजकुमार ने कहा कि

प्यारी ! क्यों डरती हो । देखो मैं फिर जी उठा । इतने दिन विदिशा नाम नगरी में शूद्रक राजा के शरीर में था । आज उस शरीर को परित्याग किया । तुम्हारी प्रियसखी महाश्वेता का भी मनोरथ आज सिद्ध होगा । आज पुण्डरीक का भो शापमोचन हुआ । वे यही कह रहे थे कि चन्द्रलोक से पुण्डरीक भी उतरे । उनके गले में वही एकावली माला पड़ी थी और बाईं ओर कपिञ्जल सुशोभित थे । कादम्बरी महाश्वेता को यह समाचार सुनाने गई । इतने में पुण्डरीक चन्द्रापीड़ के समीप आ पहुँचे । उन्होंने आदरपूर्वक हाथ पकड़ लिया और अङ्ग में लगा कर मीठे स्वर से वे बोले कि तुम्हारी मित्रता कभी छूटने न पायेगी ! मैं तुम्हें वैशम्पायन ही समझूँगा । तुम्हें भी मेरे साथ मित्रभाव से बर्तना चाहिए ।

गन्धर्वराज चित्ररथ और हंस को यह समाचार सुनाने के लिए केयूरक भेजा गया । मदलेखा ने प्रसन्नवदन होकर तारापीड़ और विलासवती के समीप जाकर कहा कि आज आपका भाग्य उदय हुआ । युवराज जी उठे । राजा, रानी, शुकनास और मनोरमा यह अचम्भा सुन कर तुरन्त आश्रम में पहुँचे । चन्द्रापीड़ माता पिता को देख प्रणाम के लिए मस्तक नवाते थे कि राजा ने दोनों हाथ फैला कर पकड़ लिया और बोले कि हे बेटा जन्मान्तर के पुण्य से मैंने तुमको पुत्र करके पाया, इस में सन्देह नहीं, परन्तु तुम साक्षात् चन्द्रमा की मूर्ति हो; तुम सर्वश्रेष्ठ हो । आज मैंने तुमको देख कर अपने को देवता से भी भाग्यशाली समझा । आज हमारा जीवन सार्थक और धर्म कर्म

सफल हुआ ! विलासवती ने बारम्बार पुत्र को चुम्बन करके हृदय को शीतल किया और वह गालों पर प्रेमाश्रु की धारा बहाने लगी । इसके अनन्तर राजकुमार ने शुकनास और मनोरमा को प्रणाम किया । उन लोगों ने यथोचित आशीर्वाद किया । चन्द्रापीड़ ने पुण्डरीक की ओर देख कर कहा कि यही तुम्हारे यहाँ वैशम्पायन होकर जन्मे थे और उन्होंने भी अपने माता पिता को प्रणाम किया । कपिञ्जल ने कहा कि श्वेतकेतु महाराज ने कहा है कि मैंने पुण्डरीक का लालन पालन तो निश्चय किया परन्तु इसका प्रेम तुम्हारे प्रति विशेष है । इस लिए तुम्हारे पास भेजा है । इसको वैशम्पायन करके ममभूना, भिन्न न जानना । शुकनास ने कहा—मैंने ऋषि की आज्ञा मानी । मैं इनको वैशम्पायन ही करके मानूँगा । इसी प्रकार की बात चीत में रात बीत गई । प्रातःकाल चित्ररथ और हंस, मदिरा और गौरी को सङ्ग लेकर वहाँ पहुँचे और उनके साथ मारे आनन्द के सम्पूर्ण नगर के लोग भी चले आये ।

आहा ! यह कैसा अच्छा दिन है । कैसे आनन्द का समय है ! सब का दुःख आज दूर हुआ । अपना मनोरथ सब ने सफल कर पाया । कादम्बरी और महाश्वेता की चिरकालिक मनोकामना सिद्ध हुई और मदलेखा और तरलिका दोनों प्रसन्न हुई ।

चित्ररथ ने आदरपूर्वक कहा कि महाराज, आज सब मनोरथ सिद्ध हुआ । अब यह दास गृह पर चल कर कादम्बरी और राज्य दोनों चन्द्रापीड़ को देकर चरितार्थ हुआ चाहता है । तारापीड़

ने उत्तर दिया कि हे गन्धर्वराज, जहाँ सुख हो वही गृह है । मैंने इसी आश्रम को अपना घर समझा है और प्रतिज्ञा की है कि शेष अवस्था यहीं व्यतीत करूँगा । तुम वधू समेत चन्द्रापीड़ को अपने घर ले जाओ और विवाह कर्म निर्वाह करो । मैं यहीं रहूँगा । चित्ररथ और हंस जामाता और कन्या को लेकर घर गये और महा आनन्द करने लगे और फिर अपना अपना राज्य सौंप निश्चिन्त होकर कालक्षेप करने लगे ।

इस प्रकार चन्द्रापीड़ और पुण्डरीक दोनों अपनी अपनी प्रियाओं के संग सुख से राज काज करने लगे । एक समय कादम्बरी ने चन्द्रापीड़ से मलिनवदन होकर पूछा कि हे नाथ ! सब तो मरमर कर जीये परन्तु पत्रलेखा कहाँ गई ? चन्द्रापीड़ ने उत्तर दिया कि हे प्रिया, मैंने शाप करके मृत्युलोक में जन्म लिया और रोहिणी पत्रलेखा रूप होकर मेरी सेवा करने को आई थी । वह फिर चन्द्रलोक में देख पड़ेगी ।

चन्द्रापीड़ हेमकूट में कुछ दिन रह कर अपनी राजधानी उज्जयिनी को गये और पुण्डरीक को राज्यभार सौंप कभी गन्धर्वलोक, कभी चन्द्रलोक और कभी पिता के आश्रम में रह कर सुख से कालक्षेप करने लगे ।

